लेखक के पूर्व-प्रकाशित उपन्यास
'बाहर-भीतर' का नवीकृत सस्करण

मूल्य पाच रुपये



राजपाल एण्ड सन्ज़ से दूसरा सस्करण 1971, © डॉ देवराज
छाया प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली, मे मुद्रित
BHITAR KA GHAO (Novel) by Dr Devraj Rs 5 00

मैं लेखक नही हू, न विशेष साहित्यिक ही हूँ। विद्यार्थी-जीवन मे कभी-कभी कहानिया लिख डालता था, पर अब अनधिकार चेष्टा समझकर वह व्यसन छोड दिया है। मैं भावुक भी नही समझा जाता। समझा नही जाता, होना भी नही चाहता। सच पूछिए तो मैं भावुकता को दुर्बल व्यक्तित्व का चिह्न मानता हू। पिछले कई वर्ष से, इसीलिए, मैं बराबर अपनी भावुक वृत्तियो से मोरचा लेता आया हू। एक वकील को भावुक होते बनता भी तो नही। दर्जनो मुवक्किल रोज़ आते है, एक से एक ज्यादा परेशान। यदि मैं उनकी परेशानियो का खयाल करते हुए उनसे पूरी फीस न लू, तो अपनी गुज़र कैसे करू ? माना कि अपनी जरूरतें घटाई जा सकती है, लेकिन इस तरह तो, आत्महत्या द्वारा, जीवन की घडिया भी कम की जा सकती है। जी हा, मेरी यह निश्चित धारणा है कि ज़रूरतो को महसूस करने और उन्हे प्रयत्नपूर्वक पूरा करने का नाम ही जिन्दगी है।

शायद इस फिलासफी की स्वीकृति के कारण ही मैं इतना कर्मठ और पुरुषार्थी बन सका हू। मेरे साथी मुझसे ईर्ष्या करते है, उनकी ईर्ष्या मुझे सन्तोष देती है। मित्रो का विचार है कि वकालत मे मैंने बहुत तेज़ी से तरक्की की है। इस तरह की प्रगति दो-चार भाग्यवानो के

जीवन मे ही देखी गई है। मैं सन्तोष के साथ अपनी इस प्रशसा को सुनता हू और कहता हू—"भई, मुख्य चीज़ लगन और टैक्ट है, और फिर जो व्यक्ति अपनी ज़रूरतें बढा लेता है उसे उन्हे पूरा करने के साधन भी जुटाने ही पडते है।" हाल ही मे मेरा मकान बनकर तैयार हुआ है—ऐसा मकान कि जिसे लोग देखें। मकान का नक्शा ज़रूर इजीनियर ने बनाया था, पर उसके निर्माण की देख-रेख बराबर मैं स्वय करता रहा था।

लेकिन मैं आपसे यह सब क्यो कह रहा हू ? व्यवहारकुशल होते हुए भी क्या मैं इतना नहीजानता कि किसी व्यक्ति के मकान का निर्माण, या उसके पेशे की सफलता, इतिहास की दृष्टि मे कोई खास महत्त्व नही रखते और कोई कारण नही कि दूसरे लोग उनमे दिलचस्पी लें। वास्तव मे मैं आपसे अपनी सफलताओ की कहानी कहने नही बैठा और यह जो इतना कुछ बक गया हू सो इसलिए कि मैं अपनी असली कहानी शुरू करते हुए डरता हू ।

मानो मैं अपने से ही डरता हू—क्योकि हमारे विचार और प्रतीतिया अन्तत हमारे व्यक्तित्व का ही अग हैं। और मैं डरता हू, इस सचाई का दूसरा पहलू यह है कि मैं अपने को समझ नही पा रहा हू। जिसे हम नही समझते, जो चीज़ अन्धकाराच्छन्न है, उससे हमे भय लगता है। मेरी बुद्धि कुछ कहती है और मेरे भीतर की वृत्तिया कुछ और। बुद्धि कहती है कि तुम्हे डरने का, भयभीत या अनुतापयुक्त होने का, कोई भी कारण नही है, तुम सफल हो, सशक्त हो और एकदम सुरक्षित, तुम्हे कही से कोई खतरा नही है, कही से किसी तरह की आच आने का अन्देशा नही है, तुम्हारा व्यक्तित्व ही नही, शरीर, धन और पद ही नही, मर्यादा भी पूर्णतया सुरक्षित है। तुम्हारी आशकाए निराधार हैं और तुम्हारा आत्मधिक्कार निरर्थक। दुनिया के किसी भी सुचिन्तित और विज्ञान-सम्मत जीवन-दर्शन के अनुसार तुम एकदम निर्दोष हो, तुमने न कोई पाप किया है, न मूर्खता। सच पूछिए तो

मूर्खता का ही दूसरा नाम अपराध या पाप है, समझदारी और पाप मे कोई लगाव नही है और यह तो तय है कि तुम अपना जीवन समझ और विवेक से चलाते रहे हो।

ये सब बुद्धि की बाते मुझे रुचती हैं, क्योकि मैं बुद्धिवादी हू। लेकिन फिर भी, फिर भी मैं जैसे विवश हू—अपनी ही सवेदना से लाचार। लगता है जैसे मन के आवेगो पर अभी भी बुद्धि पूरा नियन्त्रण नही कर पाई है—जैसे चेतना के भीतर कुछ तहें हैं, जहा बुद्धि का स्वच्छन्द सचार और शासन सभव नही है। बुद्धि समझा सकती है, किन्तु खुद समझ की नीव मे अकस्मात् उठने वाली हलचल को, उस हलचल को पैदा करने वाली स्मृतियो को दबाकर, कुचलकर खत्म नही कर सकती।

वे बाते, जिन्हे मैं भुला देना चाहता हू, क्यो बरबस याद आती है? वे चित्र जिन्हें मैं अब नही देखना चाहता, क्यो बार-बार स्मृति-पटल पर उभर आते हैं? मेरा अतीत मेरे वर्तमान को क्यो इस बुरी तरह घेरे हुए है जैसे बीत चुकने पर भी वह अभी विद्यमान है, मर जाने पर भी जीवित है? अतीत! कौन कहता है कि अतीत अस्तित्ववान नही है, कि वह वर्तमान मे ओत-प्रोत नही है, स्पन्दित नही है? और यह स्मृति, यह मानो जीवन का ही नही, मृत्यु का भी उपकरण है। स्मृति मेरी अपनी है, फिर भी जैसे उनका एक निराला अस्तित्व है—मुझसे भिन्न, क्योकि उसपर मेरा कुछ भी अधिकार नही है।

वे आखे, वे बडी-बडी आखें, मुझे क्यो दीखा करती है—और देखा करती हैं? वे आखें, जो यहा नही है, दूर तक नही है, मुझसे बहुत दूर है। सैकडो मील की दूरी और असख्य व्यवधानो को पार करके वे कैसे यहा तक पहुच जाती हैं?

नाजी की वे आखे, वे तेजस्वी किन्तु तरल आखें, जो अब तेजहीन और भावहीन बन गई हैं—जो पलक उठाये, खोये-से भाव से अब केवल ताका करती हैं! वह खिले गुलाब-जैसा मुखडा, जो अब मुरझा गया

और वे सूखे फूल की पखुडियो जैसे होठ ! वह उदास मुस्कान-शून्य मुद्रा, वे अस्त-व्यस्त, तेल मे अछूते केश ! पूरे पाच वर्ष पूर्व भाभी के इस उखडे, बिगडे रूप को देखा था, फिर भी उनकी वह मूर्ति इतनी साफ स्मृति मे उतर आती है जैसे वह देखना कल की बात हो। और वह मूर्ति मानो अनवरत मेरा उलाहना करती है—भयकर उपालम्भ। जैसे इस सबका दायित्व मेरे ही ऊपर हो, केवल मुझपर, और जैसे उनका सारा प्रतिकार और दण्ड सिर्फ मेरे ही मत्थे पडने के लिए हो।

साझ मे और सवेरे मे, और रात के निस्तब्ध एकान्त मे, बार-बार वही चित्र मेरे सामने आ जाते हैं। मैं इन चित्रो मे परेशान हू। मैं उनसे मुक्ति पाना चाहता हू। मैं वकील हू, मुझे काफी काम रहता है। व्यस्त हू, व्यस्तता का आदी हू। अब चाहता हू कि और भी व्यस्त रहू, ताकि ये चित्र मुझे परेशान न करें। पत्नी है, दो बच्चे हैं। उनकी दसियो चिन्ताए रहती है। फिर जैसे ये चिन्ताए काफी नही हैं, वे जीवन को पूरा-पूरा नही घेर पाती। दुर्भाग्य से अब मकान की देख-रेख का प्रश्न भी नही रहा, उसमे भी कुछ देर जी बहल जाता था।

मैंने अनवरत कोशिश की है कि भाभी को भुला दू, पर सफल नही हो सका हू। सफलता की आशा भी नही है। मैं अपने मस्तिष्क और स्वभाव को जानता हू, वे जैसे भूलना जानते ही नही। वे जिस बात को एक बार उठाते हैं उसे अजाम देकर, एक परिणति पर पहुचाकर ही, विश्राम लेते हैं। यही मेरी सफलता का रहस्य है—मेरी अटूट कर्मठता, अखण्ड निष्ठा। लेकिन जहा कर्म की गुजायश न हो, वहा ? वहा वहा कोई क्या करे ? मैं भी अब क्या करू ? विगत को याद किया जा सकता है, पर लौटाया नही जा सकता। इसीलिए मैं आपके समक्ष यह कहानी कहने बैठा हू। क्रियात्मक प्रतिकार की अशक्यता की स्थिति मे शायद इसी तरह अपने को मैं कुछ हल्का कर सकू, कुछ राहत और शान्ति पा सकू।

मैं जानता हू कि भाभी की, और कुछ हद तक मेरी भी, यह कहानी

सुनकर आप उसकी भलाई-बुराई की जाच करेंगे, उसपर अपना निर्णय देंगे। यह नही कि मैं उस निर्णय से डरता हू, मैं वस्तुत, उसकी प्रतीक्षा करूगा। मैं यह भी नही चाहता कि आप अपने निर्णय मे विशेष उदारता दिखलाए। मैं स्वाभिमानी हू, उदारता की भीख मागते मुझसे नही बनेगी। नही, नही—कमजोर या दयनीय मानकर आप मेरे प्रति उदार होने की धृष्टता न करें। मैं अपने को कमजोर नही मानता, क्योकि मैं बुद्धि की शक्ति का कायल हू, मैं दया-योग्य भी नही हू क्योकि मुझे प्रकृति ने पर्याप्त बुद्धि दी है। उस बुद्धि पर किसीको भी गर्व हो सकता है। अपने सम्बन्ध मे मेरी यह धारणा केवल भ्रान्ति या छलना हो, ऐसा भी नही है, उसकी सत्यता के बाहरी, प्रत्यक्षगम्य प्रमाणो की कोई कमी नही है। मेरा आलीशान भवन ही नही, मेरे महत्त्वपूर्ण सम्पर्क और सम्बन्ध, नगर मे मेरी स्पृहणीय स्थिति—ये सभी मेरी प्रतिभा के सबूत हैं।

मेरी आपसे एक ही प्रार्थना है—यह कि आप अपने निर्णय को बुद्धि की भाषा मे प्रकट करें। रहस्यवाद से पहले मुझे चिढ थी, अब मैं उससे घबराता हू। मैं नही चाहता कि आप रहस्यपूर्ण जिन्दगी की जरूरतो, रहस्यपूर्ण प्रेरणाओ की दुहाई देकर मेरे जीवन अथवा मेरे युग को बुरा-भला कहे, कोसें। और यद्यपि मैं अपने युग की मान्यताओ, पक्षपातो और आस्थाओ के लिए जिम्मेदार नही हू—वास्तव मे स्थिति इसके विपरीत है—फिर भी मैं यह सहन नही कर सकता कि कोई विगत अवैज्ञानिक युगो की और पुराने अन्धश्रद्धामूलक आदर्शो की दुहाई देकर मेरे युग की आलोचना करे। मैं साफ कह दू, मुझे अतीत की ओर देखना पसन्द नही है। मैं वर्तमान मे रहना चाहता हू और वर्तमान को ज्यादा अर्थपूर्ण बनाने के लिए भविष्य की सुनहली कल्पनाए भी करते रहना चाहता हू। लेकिन अतीत का मोह, अतीतोन्मुख दृष्टि, मुझे असह्य है। तभी तो भाभी से सम्बन्धित स्मृतिया मुझे इतनी कडवी और हेय लगती है, उनसे मुक्ति पाने की उत्सुकताभरी आशा मे ही मैं आज आपके सामने यह कहानी रखने का उपक्रम कर रहा हू।

उस दिन को आज लगभग दस बरस बीत गए जब सुमित्रा भाभी ने नई बहू के रूप मे मौसी के घर मे प्रवेश किया था। दस बरस ! फिर भी लगता है जैसे वह कल की घटना हो। वह दृश्य मेरी स्मृति पर कितना साफ अकित है ! भाई हरीकृष्ण के पीछे-पीछे, भारी रेशमी साडी मे लिपटी हुई भाभी का प्रवेश। सवा पाच फुट का कद, कुन्दन जैसा दमकता रग, स्वास्थ्य की परिपूर्ण कान्ति। मुझे याद है किस तरह घर की राशि-राशि स्त्रिया भाभी के मुखडे को देखने के लिए उन्हें चारो ओर से घेरकर खडी हो गई थी, और मौसी ने पहले मीठे ढग से और फिर डाट-डपटकर सबको अलग किया था।

दस बरस ! लगता है जैसे वह किसी, दूसरे युग, दूसरे जीवन की घटना थी, जिसका हमारे वर्तमान जीवन से, स्वय भाभी के जीवन से, कोई सम्बन्ध नही है। उस दिन भाभी उस घर मे सबसे मुख्य व्यक्ति थी—विवाह के नाटक की सलोनी नायिका, और अब—अब वे उस घर से खदेड दी गई है और उन्हे वहा पैर रखने को भी जगह नही है।

मौसी का परिवार लम्बा नही कहा जा सकता, पर उतना छोटा भी न था। सबसे बडे भैया हरीकृष्ण, उनसे छोटी बहन शोभा, उससे काफी छोटी विमला और फिर श्यामू। शोभा की दो वर्ष पूर्व शादी हो

गई थी। विमला साढ़े चार वरस की थी और श्यामू ढाई वरस का। शोभा के विवाह के कुछ ही महीने वाद मौसी विधवा हो गई थी।

भैया हरीकृष्ण ने दो वर्ष पहले कॉमर्स लेकर इण्टरमीडिएट पास किया था। इसके वाद वर्ष-भर वे कालेज मे और रहे, पर परीक्षा दिए विना ही कालेज छोडकर चले आए। घर की वदली हुई परिस्थितियो मे अव यह जरूरी हो गया था कि वे घर पर रहकर अपने पिताजी का काम सभालें। मौसाजी एक छोटे जमीदार थे और कपडे का व्यापार भी करते थे। अव उनका काम भैया हरीकृष्ण के कधो पर आ पडा।

यो भैया पढने-लिखने मे तेज न थे। मैट्रिक और इण्टर दोनो ही मे उन्हे तीसरा दर्जा मिला था। सुना गया कि वहू ने मैट्रिक पहली श्रेणी मे किया था। एफ० ए० की परीक्षा वह अभी-अभी दे चुकी थी और दूसरी श्रेणी की आशा रखती थी।

उस समय मैं उम्र से नही तो समझ से, छोटा ही था। यो मैं सोलहवे वर्ष मे था और एफ० ए० मे पढ भी रहा था, पर दुनिया की वातो से वहुत-कुछ अनजान था। मौसी मुझे वहुत मानती थी। मा ने और मौसी ने मेरे मन पर यह अकित किया कि सुमित्रा का खास देवर मैं ही हू। मौसी के एक देवरानी भी थी, जिनके एक वयस्क लडका था। पर देवरानी के कुटुम्व से मौसी की पटती न थी। मौसी जरा उग्र और हुकूमती स्वभाव की थी, देवरानी उन्हे प्रसन्न न रख सकी, फलत मौसाजी को अपने छोटे भाई से अलग होकर रहना पडा।

मौसी की सरक्षकता मे सुमित्रा को खास तौर से अपनी भाभी के रूप मे पाकर मुझे प्रसन्नता हुई।

विवाह की धूमधाम मे कई दिन तक मैं सुवह-शाम मौसी के घर और सुमित्रा भाभी के पास वना रहा। उसके खाते-पीते मैं प्राय निकट ही रहता। गर्मियो के दिन थे, कालेज हाल ही मे वन्द हो चुका था। फलत मैं कभी-कभी दोपहर-भर वही रह जाता। भाभी लगभग मेरी

ही उम्र की थी। जैसा कि मैंने बाद मे जाना, वे मुझसे सिर्फ छ महीने बडी थी। मेरा वहा रहना उन्हे अच्छा लगता, और मुझे भी। कभी-कभी, दूसरे साथियो के न मिल सकने पर, हम दो ही बैठकर ताश खेलते। भाभी ताश खेलने मे बडी निपुण थी।

उन दूर दिनो की कुछ स्मृतिया आज भी ताज़ी जान पडती है। भाभी शरीर से स्वस्थ थी, उनके चेहरे पर लालिमा-मिश्रित ओज और काति थी। कुछ भी न जानते-समझते हुए मुझे उनके मुख की ओर देखना अच्छा लगता था। उनका हसना मुझे विशेप प्रिय था, और उनसे बातें करने मे अनूठा रस मिलता। भाभी का स्वर स्पप्ट और स्निग्ध था, उनके व्यक्तित्व मे दीप्ति और मधुरता का अपूर्व सम्मिश्रण था।

विवाह के आसपास के उन दिनो मे भाभी की खूब खातिर होती थी। कभी कोई नमकीन और मिठाई खाने को लाता, तो कभी दूध और रबडी। मौसी के घर मे एक गाय थी जो काफी दूध देती थी। किन्तु भाभी को दूध पसन्द न था, और उनके हिस्से का दूध कई बार मुझे पीना पडता। दूसरी चीजो मे से भी वे मुझे हठपूर्वक हिस्सा देना चाहती। मुझे यह अच्छा लगता, पर कभी-कभी मैं मौसी से उनकी शिकायत भी कर देता। भाभी को चाय पसन्द थी, इसलिए एक बार मैंने चुपचाप बाज़ार से चाय का एक पैकेट लाकर उन्हे दिया था।

शुरू से ही भाभी को देखकर मुझे ऐसा जान पडता कि वे उस घर के दूसरे सदस्यो से भिन्न है। सच यह कि मौसी और उनके बच्चो का रहन-सहन व आदतें मुझे पसन्द न थी। मुझे किशन भैया के ढग भी पसन्द नहीं । कालेज मे पढकर भी वे पढे-लिखो जैसा व्यवहार करने के अभ्यस्त ी बने थे। वे धोती-कुरता पहनते थे, जिनसे मुझे नफरत थी। उनकी तचीत भी पढे-लिखो जैसी नही जान पडती थी। यहा तक कि वे नित्य खबार भी नहीं पढते थे। मौसी के दूसरे बच्चो की आदतें भी मुझे पसद थी।

भाभी इन सब बातो मे भिन्न थी। उनके समूचे रहन-सहन, पहनने-ओढने, बातचीत और खान-पान आदि व्यवहार मे कुछ विशेषता थी, जो वहा किसी दूसरे मे न थी। वे विशेष मीठे ढग से बोलती, विशेष शिष्टता और सौजन्य से। उनकी बातचीत मे व्यक्तित्व का निरालापन और आत्म-विश्वास की कान्ति झलकती। शुरू से ही मौसी के घर आकर भाभी ने घूघट नही किया। इसपर आसपास की स्त्रियो ने टीका-टिप्पणी की, पर भाभी पर इसका कोई असर नही हुआ। मुझे याद है कि एक दिन मेरी माताजी इसी बात पर भाभी का पक्ष लेकर मौसी से झगड पडी थी। तब से मौसी ने भाभी के घूघट न निकालने की शिकायत करनी बन्द कर दी। फिर भी वे कभी-कभी कहा करती, "बहू बडी हठी है,किसी दूसरे की बात नही मानती, बडो की भी नही।"

भाभी के आने से अब मौसी का घर विशेष स्वच्छ और व्यवस्थित दीखने लगा था। मौसी का दुमजिला मकान आयताकार था, जिसकी पूर्व और पश्चिम की भुजाए ज्यादा लम्बी थी। ऊपर दो कमरे थे, एक रसोई-घर के बगल दक्षिण मे और दूसरा उत्तर मे। रसोई की कोठरी पूर्वी भाग मे थी, उसके बराबर एक सिदरी थी। पश्चिमी ओर नहानघर था। बीच मे नीचे के आगन के ऊपर खुला हुआ भाग था जिसके चारो ओर बारजा और छते थी। उत्तरी कमरे के नीचे बैठक थी। उक्त कमरे और सिदरी के बीच मे जीना था। सुबह-शाम के अतिरिक्त मौसी अक्सर नीचे ही रहना पसन्द करती। भाभी ने ऊपर के दोनो कमरो को साफ कराके उन्हे नया ही रूप दे दिया।

विवाह के कुछ दिनो बाद क्रमश मौसी के घर आना-जाना कम कर दिया। इसका एक कारण यह भी था कि मौसी का घर हमारे घर से कुछ दूर था और मेरे पास साइकल नही थी। मैने कहा कि मौसी का घर दूर था पर उतना नही जितना उस समय जान पडता था। छोटे शहरो के रहने वाले अक्सर छोटे मकानो, तग गली-कूचो और छोटी दूरियो को महत्त्व देने के अभ्यस्त बन जाते है। तभी तो मौसी के घर की वह आध-

पौन मील की दूरी मुझे इतनी ज्यादा लगती थी। शायद इसका कारण मेरा सुकुमार स्वास्थ्य भी था। शुरू से ही मैं शारीरिक काम और कसरत मे कम दिलचस्पी लेता रहा हू। मुझे याद है कि मेरा कालेज मेरे घर से प्राय मील-भर की दूरी पर था। मुझे यह दूरी खलती थी और मैं पिताजी से साइकल न होने की शिकायत करता था। मैंने उनसे वचन ले लिया था कि मेरे एफ० ए० पास कर लेने के बाद वे मुझे साइकल खरीद देंगे।

ये सब बाते मुझे याद रह गई हैं, क्योंकि भेंट होने पर सुमित्रा भाभी अक्सर मुझसे ज्यादा बार आने का अनुरोध करती, और मैं प्राय उस अनुरोध का पालन न कर पाता। कालेज खुल जाने के बाद तो मेरा उनके पास आना-जाना और भी कम हो गया। आज उन छोटी-छोटी बातो और उनके मूल मे स्थित आलस्य और उपेक्षा-भावना की याद करके मुझे एकसाथ ही आश्चर्य और पछतावा होता है।

एक दिन माताजी ने एकाएक मुझे अन्दर बुलवाकर कहा—"क्यो रे राजन ! तू अब भाभी के पास नही जाता ?"

"कौन-सी भाभी के पास, मा ?" मैंने असमजस के स्वर मे कहा।

"अरे वही सुमित्रा भाभी, तुझे बहुत याद करती है।"

मैं चुप रहा। थोडी देर मे मा कहने लगी—"जीजी का कुछ स्वभाव ही बडा है। ऐसी लक्ष्मी-सी वह मिली है, फिर भी उसपर डाट-डपट करती ही रहती हैं। भला इतनी छोटी लडकी गिरस्ती का सारा बोझ कैसे सभाल सकती है ? यह भी नही सोचती कि अभी नई-नई घर मे आई है। भला कुछ दिन तो लाड-प्यार से रखें।"

"अपनी जीजी को तुम समझाती नही, मा ? कही ऐसा न हो कि देवरानी की तरह बहू को भी मौसी अलग कर दें।"

"अलग कर दे तो अच्छा ही हो, लेकिन मुझे इसकी आशा नही है। वह अलग हो गई तो जीजी हुक्म किसपर चलाएगी ? और न किशन मा से अलग हो। मा के इशारो पर चलते हुए बडा हुआ है। सच पूछो तो उसे इतनी बुद्धि ही नही है कि अपना भला-बुरा सोचे।"

"आखिर मौसी भाभी से चाहती क्या है ?"

"पता नही क्या चाहती है। दिन-भर बेचारी उनके दोनो बच्चो की

देख-भाल करती है, फिर भी जीजी उससे खुश नहीं रहती, और हमेशा तिनककर बात करती हैं। मुझे तो ऐसी बहू मिल जाए तो ''

"हरीकिशन की बहू सचमुच ही लक्ष्मी है," उन्होंने अपने वक्तव्य का उपसंहार-सा करते हुए कहा।

कुछ दिनों बाद भाभी हमारे घर आई। मुझे लगा कि वे पहले से कुछ ज्यादा गम्भीर हो गई हैं। कम हंसती हैं, और कम खुलकर बात करती है। इतने ही दिनों में उनके सवा पांच फुट के व्यक्तित्व में न जाने कैसी गरिमा का समावेश हो गया है। जान पड़ा कि वे पहले की अपेक्षा कुछ नीरस बन गई हैं।

मैंने मां से कहा—"मां, हम लोग भाभी के साथ ताश खेलेंगे, ये ताश बहुत अच्छा खेलती हैं।"

मां ने किसी प्रकार की विवशता प्रकट की और कहा—"अकेले ही भाभी के साथ खेल ले भैया, मुझे इस वक्त फुरसत नहीं है।"

मैंने भाभी से कहा। बोली—"तुम्हारी इतनी इच्छा है तो खेल लूंगी।"

खेलते-खेलते पूछा—"इण्टर में कौन डिवीजन लेने का इरादा है? फर्स्ट डिवीजन आएगा न?"

"देखो भाभी, कोशिश तो कर रहा हूं, आगे ईश्वर मालिक है। मेरा खयाल है कि मुझे वही डिवीजन मिलेगा, जो तुम्हें मिला है।"

भाभी को इस वर्ष दूसरी ही श्रेणी मिली थी। बोली—"मेरी बात दूसरी है, मुझे नौकरी थोड़े ही करनी है। लेकिन तुम्हें ज्यादा मेहनत करनी चाहिए। सारा भविष्य इसीपर निर्भर है।"

"हां जी," मैंने पत्ता फेंकते हुए कहा, "और तुम्हें मालूम है, किशन भैया का कौन-सा डिवीजन आया था?"

भाभी का चेहरा सहसा उदास हो गया। मुझे लगा कि मैंने कोई सी बात कह दी जो मुझे नहीं कहनी चाहिए थी। सोचा कि भाभी माफी मांग लूं, पर जबान नहीं खुली। भाभी धीरे से कह रही थी—

अच्छी बातो मे बडो की नकल करनी चाहिए, बुरी बातो मे नही। और अपनी जिन्दगी का लक्ष्य खूब ऊचा रखना चाहिए।

मेरे मुह से सहसा निकला, "और भाभी, तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है ?" कहकर मैं खेल मे लीन हो गया, जैसे कोई खास बात न कही गई हो, और उसका उत्तर भी अपेक्षित न हो। भाभी का भी कुछ ऐसा भाव था जैसे वे चालें सोचने मे व्यग्र हो।

आज समझता हू कि भाभी से वैसा प्रश्न करना कितनी अनुदारता थी। भला पति से भिन्न भी पत्नी का कोई लक्ष्य हो सकता है, और वह भी हमारे देश मे! स्वभावत भाभी ने उस प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया था। उनके इस मौन का उस समय मैंने क्या अर्थ लगाया था, याद नही, पर यह निश्चित याद है कि उस दिन मैं खेल मे हार गया था, और इसलिए उदास ही नही, भाभी से असन्तुष्ट भी हो गया था। इसीलिए जब माताजी ने भाभी के वास्ते नाश्ता भेजा और उन्होने मुझसे उनमे से हिस्सा लेने को कहा, तो मैंने इकार कर दिया।

चलते-चलते भाभी ने मुझे याद दिलाया कि मैं बहुत दिनो से उनके पास नही गया हू।

"कल हमारे यहा ज़रूर आना, आओगे न ?"

"आऊगा," मैंने बिना किसी उत्साह के कहा।

"वादा कर रहे हो ? भूलोगे तो नही, और मुझसे नाराज तो नही हो ?"

भाभी ने यह कैसे अनुमान लगाया कि मैं उनसे नाराज़ हू। यदि उस दिन मे ताश मे हार गया था तो इसके यह मानी नही कि मैं नाराज़ हो गया था। मैंने निश्चय किया कि मैं अगले इतवार को मौसी के घर जाऊगा।

भाभी के चले जाने पर मैंने माताजी से कहा, "मा, भाभी बहुत अच्छा ताश खेलती है।" मैंने देखा कि मा ने इस बात पर विशेष ध्यान नही दिया। यो ही 'हा-हू' करके रह गई। तब मैंने जैसे अपने वक्तव्य की

पुष्टि करते हुए मा से कहा—भाभी पढने मे भी तेज़ है। भैया हरीकिशन को हर क्लास मे थर्ड डिवीज़न मिलता रहा है, और भाभी को कभी फर्स्ट डिवीज़न मिला है, कभी सेकण्ड। किशन भैया ठीक से ताश खेलना भी नही जानते मा, मैं कोशिश करूगा कि इस वर्ष मेरा फर्स्ट क्लास आए। पिताजी कह रहे थे कि फर्स्ट डिवीज़न आने पर वे मुझे साइकिल खरीद देंगे।

मा ने उत्साह प्रदर्शित करते हुए कहा—भाभी तुझे अच्छी लगती हैं न ? तेरे लिए भी मैं ऐसी ही बहू लूगी।

मेरी माताजी और पिताजी के स्वभाव मे बहुत अन्तर था। पिताजी हमेशा मेरे पढने-लिखने और भविष्य की कल्पना किया करते थे, इसके विपरीत माताजी को हमेशा मेरे विवाह की चिन्ता लगी रहती थी। और मैंने सोचा, क्या भाभी जैसी पत्नी मुझे अच्छी लगेगी ? भाभी अच्छी ही हैं और वे जो इतना अच्छा ताश खेलती है, यह भी कोई बुरी बात नही है।

इतवार के दिन साझ के लगभग पाच बजे मैं मौसी के घर पहुचा। देखा, छोटे लडके श्यामू ने कमरे मे ही टट्टी कर ली है। भाभी उसे धुलाने ले जा रही है। धुलाते हुए कुछ कडे स्वर मे कहने लगी, "तुम इतने बडे हो गए, लेकिन अभी तक खुड्डी पर नही जाते ? फिर कभी कमरे मे टट्टी की तो मैं पीटूगी।" धुलाकर भाभी ने बाथ-रूम मे ले जाने के लिए श्यामू को बाह पकडकर उठाया। शायद वहा जाकर वे उसके हाथ-मुह आदि धोना चाहती थी। उधर की दिशा मे चलते हुए श्यामू मचलने और चीखने लगा। इसपर मौसी उठकर श्यामू के पास पहुच गई और भाभी से अलग करके उसे खुद सभालने लगी। भाभी वहा से हटकर चौके की ओर चली गई।

मौसाजी के सामने इस घर मे काफी ठाट-बाट थे। एक नौकर घर और एक दूकान के काम के लिए रहता था। मौसीजी बडे प्रतिभाशाली 'बिज़नेसमैन' थे। जब भाभी काम मे लगी थी, तो मौसी कह रही थी

"क्या किया जाए बेटा, जब से तुम्हारे मौसाजी मरे हैं, घर की दसा ही कुछ और हो गई है। दूकान का काम आधा भी नही रहा, आखिर तो किसन बच्चा ही है। लेन-देन है, उसकी भी हालत अच्छी नही है। किसन को अभी तजुर्बा नही है। हो भी कैसे, बाप के सामने तो कालेज मे पढ़ता रहा। मैं पहले ही कहती थी कि ज्यादा पढाने से कोई फायदा नही। नौकरी तो हमे करानी नही थी। पहले ही से किसन दूकान पर बैठता रहता तो सारा काम सीख जाता।"

"वही अच्छा रहता मौसी," मैंने कुछ कहने की जरूरत महसूस करते हुए कहा, "फिर भैया की पढाई भी तो ठीक नही हो सकी।"

"कैसे ठीक होती, बिना बाप के लडके का पढना-लिखना कैसे चल सकता है।" फिर मौसी ने स्वर धीमा करके कहा, "पढाई के लिए पैसा चाहिए भैया, सो अब कहा से आए? तुम्हारे मौसाजी के सामने जो रुपया किस्तो पर दिया गया था, उसका आधा भी वसूल नही हुआ। और लल्ला, खर्च तो कम होता नही, बढता ही जा रहा है।" स्वर को और भी धीमा करते हुए मौसी ने कहना जारी रखा। 'बहू आई है, सो इतनी फैशनवाली और फिजूलखर्च है कि क्या कहू। अभी घर-गिरस्ती की बात बिलकुल नही समझती। वह भी पढी-लिखी है न! मेरी बिल्कुल राय नही थी कि पढी-लिखी लडकी ली जाए। लेकिन तुम्हारे मौसाजी बात पक्की कर गए थे, इसलिए अब इन्कार करने से बुराई होती। मैं समझाती हू, पर अभी समझती नही। उस दिन तुम्हारे घर जाते वक्त चेहरे पर पाउडर लगा रही थी। मैंने टोक दिया तो बुरा मान गई। तुम्हारी मा से तो कुछ नही कह रही थी?"

"नही! वहा तो कुछ नही कहा, हा कुछ उदास जरूर थी।"

"उदास थी तो हुआ करें। भला गृहस्थ घर मे पाउडर और क्रीम-जैसी चीजे कैसे चल सकती है! अभी अकेली है, छ महीने पीछे बच्चा हो जाएगा। और यह मेरे भी तो दो छोटे-छोटे पिल्ले हैं न जाने नैया कैसे पार लगेगी। मैं तो फिक्र के मारे घुली जाऊ हू। कुछ समझ मे

नही आता कि क्या करू ।"

मौसी की बाते मेरी समझ मे कम आ रही थी, और उनमे रम तो बिल्कुल ही नही मिल रहा था। मेरे अपने घर मे रईसी न थी, फिर भी मैं यह ठीक से नही जानता था कि आर्थिक चिन्ता या अभाव किसे कहते हैं। माना कि मेरे पास साइकिल नही थी, किन्तु इसका मतलब यही था कि मैं कुछ ज्यादा मिहनत से पढू और अच्छे नम्बरो से पास होऊ। मेरी समझ मे सारा दोप किशन भैया का था। यदि मौसाजी दूकान अच्छी तरह चला सकते थे, तो किशन भैया क्यो नही चला सकते ? और जो चला नहीं सकते, तो उन्होने शादी क्यो की ? यह कितने अन्याय की वात थी कि मेरी छोटी और अच्छी भाभी को इतना काम करना पड रहा था। क्यो नही मौसीजी खुद ही श्यामू को धुलाती ? और जव भाभी ने श्यामू को ज़रा डाट दिया था, तो मौसी की भवे टेढी क्यो हो गई थी ? भाभी ने ठीक ही कहा था कि इतने वडे बच्चे को कमरे मे टट्टी नही करनी चाहिए।

वीच मे थोडी देर को भाभी आई और मुझे रसोई के पास वाले कमरे मे लिवा ले गई। कुछ देर वाद वे फिर रसोईघर मे पहुच गई, मौसी भी वही पहुची हुई थी। मुझे लगा कि वे भाभी को लक्ष्य करके कुछ वडवडा रही हैं।

कुछ समय वाद किश्ती मे चाय का सामान सजोए हुए भाभी कमरे मे वापस आ गई। मौसी अव भी कुछ वडवडा रही थी।

मैंने भाभी से पूछा—"मौसी क्या कह रही है ? शायद तुम्हींसे कुछ कह रही हैं।"

"नही हा " कहकर भाभी ने चुप करना चाहा, किन्तु वेसाख्ता उनके मुह से निकला—"मुझे घर के लोगो को डालडा खिलाना पसन्द नही है, इसीसे विगड रही है।"

मैंने देखा, चाय के साथ मूग के आटे की पकौडिया भी हैं। डालडा का उल्लेख सुनकर उस समय मैंने क्या महसूस किया, ध्यान नहीं, पर

वह वात मुझे याद रही और मैंने घर पहुचकर उसे माताजी पर भी प्रकट किया। उन दिनो तक वनस्पति घी उतना प्रचलित नही हुआ था जितना कि आजकल है, विशेषत हमारे उस छोटे शहर मे। इसलिए डालडा की वात सवको कुछ अजीव जान पडी।

उस दिन मैंने पकौडिया खूब रुचि से खाई थी और मन ही मन भाभी के प्रति विशेष कृतज्ञता तथा स्नेह का अनुभव किया था। भाभी चाय वहुत अच्छी वनाती थी, उनके साथ वैठकर पीने मे वह मुझे और भी अच्छी लगी।

कुछ देर वाद भैया हरीकृष्ण भी आ गए। सव उन्हे 'किशन' कहकर पुकारते थे। किशन भैया शरीर से खूव स्वस्थ थे, वल्कि कुछ स्थूल, यद्यपि उनकी लम्वाई अधिक न थी। उनका चेहरा चौडा, गोलाकार था और गाल उभरे हुए। नीचे का होठ कुछ मोटा, रग गेहुआ। मुझे ये भैया खास प्रिय नही लगते थे। उनके व्यक्तित्व मे जो चीज़ मुझे सवसे कम पसन्द थी वह उनकी वातचीत का ढग और वाते थी।

"कहो राजिन्दर, अच्छे हो ? वहुत दिनो मे इधर आना हुआ।"

मुझे 'राजिन्दर' कहा जाना एकदम नापसन्द था।

कोई या तो राजेन्द्र कहे या राजन, और कुछ क्यो कहे ? और किशन भैया के प्रश्न एकदम पुराने, पिटे हुए होते थे जिनका पूछा जाना मन मे खीझ उत्पन्न करता था। मेरी कुशल पूछने के वाद वे कहते—"और मौसी वैनी हैं, ठीक हैं ? और मौसाजी, सव ठीक हैं न ?" इसके वाद अक्सर वे मेरी पढाई के सम्वन्ध मे चर्चा करते।

आज उन्होंने कहा—"राजिन्दर, ठीक पढ रहे हो न ? हा भाई, मेहनत कर डालो ताकि फर्स्ट डिवीज़न आ जाए, क्योंकि मौसा जी की तरह तुम्हे भी नौकरी ही करनी है वैसे तो तुम पढने मे हमेशा से अच्छे हो।

"तुम्हारी भाभी को इण्टर मे सैकण्ड क्लास मिला," उन्होंने कुछ

रुककर कहा। "वैसे इन्हे भी पढने का शौक बहुत है। हमे तो भाई, दूकान और जमीदारी के काम से फुरसत ही नही मिलती यो भी पढने-लिखने का खास शौक नही है, कालेज के दिनो मे भी नही था। हा, 'वालीवाल' के खेल मे हमे बहुत मजा आता था। अब तो कुछ खेलने का कही मौका ही नही मिलता और जब मे कालेज छोडकर मैं घर पर आया हू, मेरा पेट बराबर खराब रहता है। इसलिए मैं तुमसे कहता हू कि कोई न कोई खेल जरूर खेलते रहो।"

किशन भैया को उपदेश देने की इतनी आदत क्यो थी, यह मेरी कभी समझ मे नही आया। खुद कभी थर्ड डिवीज़न से ज्यादा नही पाया, लेकिन मुझे बराबर यह नसीहत करते रहे कि मेहनत से पढो। मैं सोचता, उन्हे यह सब सीख देने का क्या अधिकार है? क्या उन्हे इसलिए यह अधिकार है कि वे मेरे बडे भाई लगते है? ऊह, ऐसे भाइयो की फिक्र कौन करता है उस दिन भाभी ने भी पढने के बारे मे पूछा था, पर उनकी बात और है। भाभी की बोली मे कितना मिठास है!

अपने और भाभी के बीच मे किशन भैया का इस तरह आना मुझे अच्छा नही लगा। उनकी वजह से मैं भाभी के साथ ताश खेलने का मौका भी नही पा सका।

भाभी ने किशन भैया से पूछा—आपके लिए चाय बनाऊ?

"क्या हर्ज है, बना लो, राजिन्दर को भी चाय पसन्द है।" मैंने उन्हे सूचना दी कि मैं चाय पी चुका। इसपर उन्होने तपाक से कहा, "कोई बात नही, एक कप और सही।"

भाभी फिर रसोईघर की ओर चली गई।

कुछ देर मे किशन भैया मुझे अपने सोने के कमरे मे लिवा गए, भाभी को सूचित करते गए कि चाय वही पहुचा दें।

यह कमरा मैंने पहले भी देखा था, पर अब उसकी शक्ल दूसरी ही थी। जान पडता था भाभी ने उसे विशेष रुचि से सजाया था। शादी मे कुछ फर्नीचर भी भाभी के मायके से मिला था, उसकी कुछ चीजे नीचे

के बैठक-रूम मे सजा दी गई थी, और कुछ यहा थी। मिले हुए सामान मे सागवान की बनी हुई चार मेजे भी थी, जिनमे दो यहा मौजूद थी। किशन भैया ने उन मेजो के लिए हाल ही मे मेजपोश खरीदे थे। नक्काशी किए हुए दो मुरादाबादी फूलदान भी उन्होने अभी मगवाए थे, और वे एक एलार्म-घडी का आर्डर कर चुके थे। भाभी के चाय लेकर आने तक वे मुझसे इन्ही चीजो की चर्चा करते रहे।

चाय पाते हुए मेरी नज़र बिस्तर किए हुए एक पलग पर रखे दो तकियो पर पडी। उनके गिलाफो पर बडी आकर्षक कढाई हो रही थी। एक पर लिखा था 'फार्गेट मी नॉट', और दूसरे पर 'स्वीट ड्रीम्स'। प्रत्येक गिलाफ के एक-एक कोने पर सुन्दर त्रिभुजाकार जाली बनी हुई थी। मैं उनकी प्रशसा करने लगा।

"मेरा इरादा है कि बरसात बाद इस कमरे मे सफेदी के बदले कोई रग करा लू।" किशन भैया ने मेरी बात को बीच मे ही काटते हुए कहा।

उन्हे कोई उत्तर न देकर मैंने भाभी से कहा—"गिलाफो पर यह कढाई किसने की है, भाभी ?"

"तुम्हे पसन्द है ?" भाभी ने उत्फुल्ल स्वर मे कहा।

"बहुत पसन्द है," मैंने उत्तर दिया। किन्तु भाभी के प्रश्न का ठीक अभिप्राय मेरी समझ मे तब आया जब, लगभग एक महीने बाद, उन्होने दो सुन्दर तकियो के गिलाफ मुझे भेंट किए। उनमे एक पर मेरा नाम था और दूसरे पर पूर्वोक्त गिलाफ की इबारत—"फार्गेट मी नॉट।"

कमरे मे रग कराने की चर्चा के बाद किशन भैया सहसा बिजनेस के भविष्य के सम्बन्ध मे बाते करने लगे। "क्यो भाई, यह एकाएक कपडा सस्ता कैसे हो गया, तुम कुछ बता सकते हो ?"

"नही भैया, मैंने 'इकोनामिक्स' का विषय नही लिया, साइस का विद्यार्थी हू। लेकिन कपडा सस्ता होना तो अच्छी बात है ?"

भैया हसे। बोले—अभी तुम लडके ही हो। बिजनेसमैन का फायदा तो महगाई मे ही है। जरा लडाई जोर पकड जाए, फिर देखना।

मैं खामोश रहा। स्पष्ट ही उस चर्चा मे मुझे कोई दिलचस्पी नही थी।

जब मैं चलने को हुआ तो भाभी ने मुझसे कहा—दो-चार किताबें पढने को दे जाओगे, देवर ? तुम्हारे घर पर बहुत-सी किताबें देख आई हू। खाली वक्त मे मेरा मन नही लगता।

"हा भाई, इन्हे ज़रा किताबो का ज़्यादा शौक है।" भैया ने समर्थन किया।

मैंने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाते हुए कहा—"ज़रूर दे जाऊगा, भाभी ! मैं लाइब्रेरी का मेम्बर भी हू, वहा से भी पुस्तके ला दिया करूगा।"

मौसी के घर से चलते हुए उस दिन मैंने यह महसूस किया कि किशन भैया और भाभी के बीच एक अनिर्वाच्य व्यवधान या दूरी है, और वे एक-दूसरे से विषम हैं। किन्तु यह दूरी या विषमता कितनी है, और दोनो के भावी सम्बन्ध और सुख के लिए क्या अर्थ रखती है, यह सोचने लायक अवस्था या बुद्धि उस समय न थी। मुझे यह भी लगा कि भैया की अपेक्षा भाभी की वातो को, या स्वय भाभी को, मैं ज्यादा समझता हू। मुझे यह सोचकर बुरा लगा कि किशन भैया ने भाभी के काढे हुए गिलाफो की प्रशसा में एक शब्द भी नही कहा। मुझे इस बात की खुशी थी कि भाभी ने मुझे अपने लिए पुस्तकें लाने का भार सौंपा था।

पुस्तकें पहुचाने और लाने के सिलसिले मे मैं अक्सर भाभी के पास आने-जाने लगा। मैं उनके निकट कुछ देर जरूर रुकता, पर ज्यादा देर ठहरने और लम्बी बातचीत करने का मौका कम ही मिलता। इसका एक कारण यह था कि भाभी के अलावा दूसरे लोगो से बात करना मुझे पसन्द नही था। जब कभी मौसी पास आकर बैठ जाती, या किशन भैया आ पहुचते तो मुझे वहा रुके रहना कठिन हो जाता, और मैं बहाना करके जल्दी ही चल देता। दूसरे, मैं भाभी की मेहमानदारी से भी डरता था।

उस दिन डालडा की चर्चा सुनकर माताजी ने क्षुब्ध स्वर में कहा था, "जब ऐसी नीयत है तो भानजे की खातिर ही क्यों करती है? जैसे मेरे घर में राजन को खिलाने-पिलाने को अन्न-घी नहीं है।" और उन्होंने मुझे समझाया था कि किसीके भी घर, चाहे वह कितने ही निकट सम्बन्धी क्यों न हो, बार-बार नहीं खाना चाहिए। इसलिए मैं ज्यादा रुककर भाभी को ऐसा मौका न देना चाहता कि वे मेरी लम्बी-चौड़ी आवभगत करें। इसपर भी भाभी मुझे चाय ज़रूर ही पिला देतीं। और पुस्तकों के लिए वे मुझे इतने मुक्त तथा मीठे ढंग से धन्यवाद देतीं कि मैं आने-जाने के सारे श्रम को भूल जाता।

फिर भी यह श्रम कभी-कभी मुझे खलता था। इसलिए मैंने ऐसा प्रबन्ध किया कि लाइब्रेरी का चपरासी पुस्तकें सीधे भाभी के पास पहुंचा दिया करे, और उन्हींसे वापस भी ले आया करे। कुछ दिन बाद तो भाभी खुद ही लाइब्रेरी की सदस्य भी बन गईं। इसके बावजूद मैं कभी-कभी उनके पास हो आता, और उन्हें नई खरीदी गई, या दूसरे किसी कारण से रोचक, पुस्तकों के नाम-पतों की सूचना दे आता।

भाभी के पास पहुंचने से मुझे एक विशेष लाभ भी होता, वे अक्सर मेरे अध्ययन की प्रगति के बारे में पूछतीं और प्रथम श्रेणी पाने के लिए परिश्रम करने की प्रेरणा देतीं। बाद में तो वे यह भी कहने लगी थीं "अच्छा देवर, अब तुम जाओ, तुम्हारी परीक्षा निकट आ रही है।" लेकिन उनके ढंग से यह आभास कभी न होता कि वे मुझे टालने के लिए वैसा कह रही हैं। वास्तव में उनकी मुद्रा से विपरीत भावना का ही प्रमाण मिलता। ज़ीने तक पहुंचकर जब तक मैं उतरने न लगता तब तक वे बराबर मेरी दिशा में देखती रहतीं। उस अवसर पर उन्हें मैं कभी हाथों से और कभी दृष्टि से ही 'नमस्ते' करता हुआ नीचे उतर जाता।

धीरे-धीरे भाभी के सम्बन्ध में मुझे बहुत-सी बातें मालूम हो गईं। भाभी के पिताजी एक इण्टर कॉलेज के प्रिंसिपल थे, यह मैं पहले से जानता था। वे दर्शन के अच्छे विद्वान थे और सत्याग्रह के सिलसिले में जेल-यात्रा

कर चुके थे, यह भाभी से मालूम हुआ। भाभी के कई भाई-बहिन थे, किन्तु उनके पिताजी उनसे सबसे अधिक स्नेह करते थे। हाल ही मे भाभी की माताजी का देहान्त हो गया था।

धीरे-धीरे भाभी के स्वभाव का भी निकट परिचय हुआ। उनमे काम करने की अपार क्षमता है, काम से वे तनिक भी नही घबराती। किन्तु बात सहना उन्हे एकदम असह्य है। वे बहुत ही सवेदनशील है, इसलिए कभी-कभी सान से खटक जाती है। अत्याचारी से लडने का, अन्याय का मुकाबला करने का, भाभी के पास एक अमोघ अस्त्र है—भोजन का परित्याग। इस अस्त्र के बल पर वे पति और सास दोनो के सम्मिलित हस्तक्षेप के विरुद्ध अपने न्यायपूर्ण हठ की रक्षा कर पाती है।

एक दिन भाभी ने यकायक मुझसे पूछा—"देवर, तुम ईश्वर को मानते हो ?"

अपने जीवन मे पहली बार मैंने ऐसा प्रश्न सुना था। मैं चकित हुआ—यद्यपि अब सोचता हू कि इसमे उस तरह चकित होने की कोई बात न थी। कहा—"ईश्वर को तो सभी मानते हैं, भाभी।"

"हुश, सब कहा मानते है। तुमने इतिहास मे नही पढा कि बुद्धजी ईश्वर को नही मानते थे ? मेरे घर एक जैन पण्डित आया करते थे, वे कहते थे कि यह कभी सिद्ध नही किया जा सकता कि दुनिया की सृष्टि करनेवाला कोई ईश्वर है।"

"लेकिन बुद्ध तो ईश्वर का अवतार थे भाभी।"

मैंने बचपन मे भागवत की कथा सुनी थी, और मुझे यह सोचकर प्रसन्नता हुई कि मैं उस कथा का उपयोग कर रहा था।

"अरे वाह ! यह तुमने बडे मजे की बात कही। बुद्ध ईश्वर को नही मानते थे और स्वय बुद्ध ईश्वर का अवतार थे। अच्छी ढकोसलेबाजी है।"

फिर बोली—"मैं समझती हू कि ईश्वर को मानना फिजूल है। यदि ईश्वर हो और वह समझदार और दयामय हो, तो दुनिया मे ऐसी बातें

नही होनी चाहिए।

"कैसी बातें भाभी ? क्या नही होना चाहिए ?"

"ऐसी गलत बातें जो हुआ करती है, जैसे बगाल मे अकाल, जैसे अग्रेज़ो का हमारे देश पर राज्य, जैसे मेरी इस घर मे शादी।"

कहकर वे हसने लगी। भाभी मुझसे सिर्फ छ महीने बडी थी, पर उन दिनो मुझे कभी-कभी जान पडता मानो समझ और बुद्धि मे वे मुझसे कही ज्यादा बडी हैं। काफी दिनो बाद मैं उनकी उन बातो का मर्म समझने लायक बन सका।

और कभी-कभी मैं कहता "छोडो भाभी इन बातो को, आओ ताश खेलें।"

अरे नही भैया," वे कहती, "इस घर मे बिना ताश खेले ही गुज़र नही है, ताश कौन खेलने देगा ?"

फिर भी कभी-कभी मेरा मन रखने को वे खेलने बैठ जाती, विशेषत रविवार के दिन, जब मैं कभी दोपहर मे उनके घर पहुच जाता। उस समय किशन भैया घर पर नही रहते, मौसी अपने बच्चो के साथ नीचे घर मे पहुची रहती, और भाभी अपने सोने वाले कमरे मे अकेली होती।

वे अपेक्षाकृत फुरसत के दिन थे—मेरे और भाभी दोनो के लिए। वे निश्छल और निर्द्वन्द्व स्नेह के दिन भी थे। उस समय यह कैसे सोचा जा सकता था कि वे दिन सदा के लिए बीत जाएगे, कभी लौटकर न आने के लिए। महाकाल के असीम विस्तार मे उन निष्कपट, सरल-सलोनी घडियो की फिर कभी आवृत्ति नही होगी—नही हो सकेगी—यह सोचकर न जाने कैसी अनिर्वचनीय कसक और पीडा होती है।

एफ० ए० की परीक्षा समाप्त होते-होते मुझे दो महत्त्वपूर्ण खबरें मिलीं—एक प्रिय और दूसरी अप्रिय। पहली खबर यह थी कि भाभी ने एक बच्ची को जन्म दिया है और दूसरी यह कि मेरे पिताजी की बदली होने वाली है।

पहली बार जब मैं भाभी की मुनिया को देखने गया तो वह लगभग हफ्ते-भर की हो चुकी थी। उसका रग एकदम लाल-लाल था, और चेहरे की रूप-रेखा स्पष्ट नहीं थी। कभी वह एक तरह की दीखती, कभी दूसरी तरह की। उसके होठो मे लगातार हरकत होती रहती, और उसकी आखें प्राय अधखुली या बन्द रहती। ज्यादातर अपने हाथ-पैर निचोड़े वह मा के शरीर से चिपटी हुई रहती। उसे छूते और दुलारते हुए भाभी के चेहरे पर अपूर्व मृदुता और ममत्व की झलक आ जाती।

बच्ची के नन्हे हाथ-पैर औरकोमल शरीर तथा आकृति मुझे बडे प्रिय लगे। "इसका नाम क्या रखोगी, भाभी ?" मैंने चाव-भरे स्वर मे पूछा।

'क्या नाम रखू ? जो तुम कहो वह रख दू। मैंने तो 'मजु' सोचा है।

"मजु अच्छा नाम है, लेकिन "

"दादी चाहती है कि मुनिया का नाम 'गौरी' रखा जाए, और तुम्हारे भैया की राय है कि उसे 'उर्मिला' नाम दिया जाए।"

"नही भाभी, यह सब नही इनमे तो 'मजु' ही अच्छा है, लेकिन 'मजु' मे भी नयापन नही रह गया है। जिधर सुनो उधर 'मजु', 'मजुल' कहे तो कैसा ?"

" 'मजुल' !" भाभी ने प्रसन्नता से चमत्कृत होकर कहा, "यह तो बहुत ही सुन्दर नाम है। वाह देवर, बडा अच्छा सुझाव दिया। एक ही अक्षर जोड देने से कितना फरक पड गया !"

और वह मुनिया को 'मजुल' कहकर थपथपाने तथा प्यार करने लगी।

कुछ देर बाद मैंने भाभी को पिताजी की बदली की खबर सुनाई। सुनकर चौक पडी। बोली—यह बदली क्यो हो रही है भाई, किस कुसूर मे ?

"कुसूर कुछ नही, सरकारी नियम है।"

"यह तो बडा अन्धेर है भैया ! ऐसी नौकरी किसी काम की नही।" फिर वे गम्भीर हो गई। कुछ देर मे बच्ची को लक्ष्य कर बोली—"चाचा जा रहे हैं मुनिया, मुनिया चाचाजी को अच्छी नही लगी, लडकी है न !"

"अरे नही, भाभी, मुनिया तो बडी अच्छी है, बडी प्यारी-प्यारी, मुझे तो बडा अफसोस है कि खिलाने को नही मिलेगी।"

"तो क्या अब यहाँ कभी रहना नही होगा ? क्या फिर यही बदली नही हो सकती ?"

"हो क्यो नही सकती। लेकिन पिताजी कहते थे कि अभी कई वर्षों तक यहाँ बदली होना असम्भव है लेकिन भाभी, मैं कभी-कभी यहाँ आया करूँगा। चाचाजी का घर है, मौसी जी है, तुम हो। है न ?"

"जरूर आया करना, यह तो अपना ही घर है।" कहकर वे मौन हो रही। मुझे लगा कि भाभी को बदली होने की खबर देकर मैंने अच्छा

नही किया। लेकिन खवर तो उन्हे होनी ही थी, सचाई से वचकर कहा रहा जा सकता है! यह अजीव वात है कि कष्टप्रद सचाई को भी विना जाने हमारी गुज़र नही होती। मैं कुछ देर पास वैठा मुनिया से वाते करने की कोशिश करता रहा, फिर मौसी को यह समझाकर कि वच्ची का नाम गौरी रखना क्यो ठीक नही होगा, और 'मजुल' नाम क्यो अच्छा है, घर वापस चला आया।

वालकपन की कच्ची अवस्था मे स्नेह-सम्वन्ध सरलता से वन जाता है। उस समय व्यक्तित्व मे गाठें नही होती, लम्वे-चौडे स्वार्थ नही होते, जटिल मागें नही होती, इसलिए हम थोडे ही मे, साहचर्य के अभ्यासवश, दूसरो को अपना समझने लगते हैं। वाद मे, जीवन के सघर्ष मे पडकर, हज़ार व्यस्तताओ के वीच, हम फूक-फूककर कदम रखते हैं और स्नेह तथा मैत्री मे भी हिसाव से चलने लगते हैं। भाभी के जैसा सम्बन्ध आगे की जिन्दगी मे फिर नही वन सकेगा, कभी भी नही वन सकेगा, इसका आभास उस समय मुझे विलकुल ही नही हो सका था।

स्थान-परिवर्तन के लिए पिताजी को सरकार की तरफ का समय दिया गया था। हमें बिजनौर से लखनऊ बीच में एक अच्छी खबर यह मिली कि लगभग साढ़े ती चाचाजी की लड़की सुषमा की मंगनी की रस्म होगी, लोगों को उसमें ज़रूर आना पड़ेगा।

मई का अन्तिम सप्ताह था। यों तो बिजनौर में थी किन्तु लखनऊ और भी गरम था। खैरियत यह हुई एक मित्र की कृपा से हमें हीवेट रोड पर सुविधा से ए गया। शुरू में मुझे बिजनौर छोड़ना बुरा लगा था। आकर, वहाँ के विशाल, भव्य वातावरण में, मैं क्रमशः बिज शहर को भूलने लगा। लखनऊ में मैं जिधर मुँह उठात सड़कें और ऊँची तथा बड़ी इमारतें दिखाई देतीं। हमारा छोटा था, पर साफ था। उसके निकट ही हुसैनगंज का कुछ दूर वलिंगटन और रॉयल होटल थे, प्रथम के सामने काउन्सिल के सदस्यों के ठहरने का भवन था। आगे 'का और उससे कुछ आगे विशाल डाकघर। इन चित्रों के बीच तंग सड़कों, गली-कूचों तथा घरों के क्षुद्र चित्र खोने और बि

पक्की भव्य इमारतों से भी अधिक मुझे लखनऊ की [illegible]
हरियाली ने आकृष्ट किया। वहा के पार्कों और बागों को देख [illegible] मैं
मुग्ध हो गया। बनारसी बाग, सिकन्दर बाग और बादशाह बाग—
लखनऊ मे चारो ओर बाग ही बाग हैं। जहा जिन्दा चिड़ियाघर है
और मुर्दा अजायबघर। बागो की समान [illegible] मे ही गज भी है।
गरमी के बावजूद, आठ-दस दिन मे मैंने नगर के काफी हिस्से की परि-
क्रमा कर डाली, और बडे सतोष के साथ पिताजी से कहा— अच्छा हो
यदि यहा से हमे कही दूसरी जगह न जाना पडे। मुझे लखनऊ बहुत पसन्द
है।

"हू हम कहते थे न! तब तो तुम बिजनौर छूटने का अफसोस [illegible]
रहे थे। यहा पढने-लिखने और सब तरह की तरक्की करने का [illegible]
मौका है।"

यह 'तरक्की' शब्द पिताजी का प्रिय शब्द था, वे उसका बहुत
प्रयोग करते थे।

पिताजी के चरित्र तथा स्वभाव को मैं उस समय ठीक से नही
समझता था। वे बडे परिश्रमी थे और अपनी उन्नति यानी आय-वृद्धि
का निरन्तर प्रयत्न किया करते थे। मैं उनका अकेला लडका था, फिर
भी वे मेरा ज्यादा लाड नही करते थे। वे सदैव इस बात का ध्यान रखते
कि मैं अपना काम नियम से और ठीक-ठीक करू। पिताजी बडे सामा-
जिक और व्यवहार-कुशल थे। बिजनौर मे उनका अनेक प्रभावशाली
व्यक्तियो से परिचय था। किन्तु लडकपन मे उन्होने मुझे कभी इस बात
का प्रोत्साहन नही दिया कि मैं बहुत-से मित्र बनाऊ, और उनके साथ
आवारागर्दी करते हुए समय नष्ट करू। यह भी एक कारण था कि बिज-
नौर मे रहते हुए मैं बहुत-सी बातो से अनजान बना रहा।

बिजनौर मे हम लोग काफी सादा जीवन बिताते थे। काम का
फर्नीचर तथा दूसरा सामान रखते थे, अधिक कुछ नही। कपडे भी वहा
के वातावरण और अपनी हैसियत के अनुरूप पहनते थे। कालेज मे

कमीज और पैण्ट पहनकर जाता था, वैसे अक्सर कुर्ते-पाजामे में घूमता था।

लखनऊ आकर हमारे रहन-सहन मे परिवर्तन होने लगा। पिताजी अपने को बदले हुए वातावरण के अनुकूल बनाने की क्रिया मे कितने कुशल थे, इसका अनुमान करके आज मुझे आश्चर्य होता है। लखनऊ पहुचते-पहुचते उन्होंने मेरे और अपने लिए भी बहुत-से नये कपडे बनवा डाले। वे तेजी से उपयोगी सम्पर्क भी स्थापित करने लगे।

जून के दूसरे सप्ताह मे मेरा परीक्षाफल निकला। मैं प्रथम श्रेणी मे पास हुआ था। इससे मैं तो प्रसन्न था ही, पिताजी भी बहुत सन्तुष्ट हुए। अपने आफिस तथा पास-पडोस के परिचित लोगो को आमन्त्रित करके उन्होंने एक पार्टी दी। मेरा सबसे परिचय कराया, और लोगो के बधाई देने पर मेरी सफलता को सबकी कृपा का फल बताते हुए भगवान को धन्यवाद दिया।

उस समय मैं यह समझने योग्य नहीं था कि मैं बदल रहा हू, पर यह स्पष्ट देख रहा था कि पिताजी बदल रहे हैं। वे अब कुछ ज्यादा मुक्तहस्त होकर खर्च करने दीखते, विशेषत मेरे ऊपर। अपने वादे के अनुसार उन्होंने मेरे लिए बढिया रैले साइकिल खरीद कर दी। मेरी पोशाक का भी वे विशेष ध्यान रखने लगे। और कभी-कभी मुझसे मेरे भविष्य के बारे मे बात करते हुए कहते, "अब तुम्हे विश्वविद्यालय मे पढने का मौका मिलेगा, मेहनत से पढोगे तो किसी दिन मुझ से ज्यादा ऊचे पद पर जा सकोगे। तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिए सिविल सर्विस की प्रतियोगिता परीक्षा, और सेण्ट्रल गवर्नमेण्ट की सर्विस। प्रान्तीय सर्विसें किसी काम की नहीं।" और वे प्रान्तीय अफसरो की दुर्दशा का वर्णन करते हुए आई० सी० एस० अफसरो के रोब तथा दबदबे का आकर्षक चित्र उपस्थित करते।

विश्वविद्यालय मे प्रवेश करने से पहले ही पिताजी ने मुझे यह महसूस कराने का प्रयत्न किया कि मैं एक असामान्य नवयुवक हू जिसका

भविष्य उज्ज्वल है। साथ ही मुझे अपनी वढी हुई जिम्मेदारी का भी आभास दिया। पिताजी का वार-वार इस वात पर जोर देना कि मुझे वडा आदमी वनना है मुझे विशेष रोचक नही लगता था, फिर भी मैं उन्हे विश्वास दिलाता कि मैं उनकी आशाओ को पूर्ण करने के लिए जी-जान से कोशिश करूगा।

जुलाई के तीसरे सप्ताह मे जव विश्वविद्यालय खुला तो मुझे फिर एक वार नवीनता का आघात लगा, मानो विश्वविद्यालय लखनऊ की नूतनता मे स्वय भी एक नवीनता हो। इतने छात्र-छात्राए और शिक्षक, इतनी विशाल इमारत, इतनी वडी लाइब्रेरी, विजनौर के तीसरी श्रेणी के इण्टर कॉलेज से यह सव कितना भिन्न था! मैंने फिर एक वार महसूस किया कि लखनऊ आना मेरे लिए कितना वडा सौभाग्य हुआ है।

वी० एस-सी० मे मैंने गणित के साथ भौतिक विज्ञान और केमिस्ट्री ली थी। पिताजी ने एक वार चाहा था कि मैं जीव-शास्त्र पढू और डाक्टर वनू, पर उनमे मेरी रुचि नही थी। उन दिनो मैं इतना भावुक था कि मेटको के मारने की कल्पना भी नही कर सकता था—और मैं जानता था कि जीव-शास्त्र के विद्यार्थियो के लिए इस तरह की हत्या और चीडफाड अनिवार्य रूप से अपेक्षित थी। अव सोचता हू कि यदि मैं उस गलत भावुकता मे न फसकर डॉक्टरी पढ लेता तो आज इतना असहाय महसूस न करता। तव शायद मैं भाभी का कुछ इलाज कर सकता।

लेकिन उस समय मेरी गणित मे विशेष रुचि थी। मुझे अपने सुलझे, तर्कनाशील मस्तिष्क का गर्व था, और मैं सोचता था कि प्रतियोगिता परीक्षा मे, गणित के वल पर, मैं अवश्य ही ऊचा स्थान प्राप्त कर सकूगा। पिताजी मेरे इन विचारो से परिचित और सहमत थे।

विश्वविद्यालय की पढाई शुरू हो जाने पर एक वार पिताजी ने मुझे वुलाकर कहा—राजन अव तुम सयाने हो गए, अपना भला-वुरा खुद समझ सकते हो। मैं नही चाहूगा कि कभी तुम्हारी स्वतन्त्रता मे अनुचित हस्तक्षेप करूँ। फिर भी मैं सलाह दूंगा कि तुम अपने समय

का ठीक विभाजन करके सदुपयोग करो। विश्वविद्यालय का रीडिंग रूम बहुत अच्छा है। कुछ देर वहा बैठकर पढा करो, इत्यादि। मैंने पिताजी को आश्वासन दिया कि मैं अपने समय का अच्छे से अच्छा उपयोग करूगा।

एफ० ए० के परीक्षाफल और पिताजी की प्रशसा तथा बातचीत मे मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि मैं किसी अर्थ मे असामान्य हू। किन्तु दस-पन्द्रह दिन ही विश्वविद्यालय मे पढ लेने पर मेरी यह भावना विलीन होने लगी। मेरी कक्षा मे दर्जनो फर्स्ट-क्लास विद्यार्थी थे, भिन्न-भिन्न जिलो और शहरो के, और मैंने पाया कि मैं गणित मे भी उतना विशिष्ट नही हू। अपनी साधारणता की इस अवगति से मैं आरम्भ मे कुछ हतोत्साह हुआ, किन्तु शीघ्र ही, यह महसूस करके कि मैं दूसरो से विशेष भिन्न नही हू, मैं अपना तनाव और दायित्व घटा हुआ अनुभव करने लगा। इस भावना से कि मैं विश्वविद्यालय के बहुत-से विद्यार्थियो मे एक हू, और मेरा मार्ग उनसे निराला या पृथक् नही है मैंने अपने को आश्वस्त और स्वस्थ महसूस किया।

शुरू के उन महीनो मे मुझे एक शिक्षक ने विशेष रूप से आकृष्ट किया, ये शिक्षक थे डॉक्टर भल्ला। वे हमे रसायन-शास्त्र पढाते थे।

डॉ० भल्ला स्वस्थ, लम्बे गौर-वर्ण पजाबी थे—बडे सक्रिय और सजीव। हाल ही मे विदेश मे डॉक्टर की उपाधि लेकर आए थे। साइस-फैकल्टी मे उनकी बडी ख्याति थी। अपने विभाग मे वे सबसे अधिक योग्य विद्वान और सफल शिक्षक समझे जाते थे। डॉक्टर भल्ला बडा रस लेकर अपना विषय पढाते। विभिन्न तत्त्वो के योग को समझाने वाले समीकरणो को ब्लैक बोर्ड पर लिखते हुए वे बडे मधुर भाव से मुस्कराते रहते। विभिन्न गैसो और गन्धक आदि के तेजाबो के नाम वे ऐसे रस से लेते, जैसे वे पदार्थ उनके सगे-सम्बन्धी हो। पढाते समय की उनकी प्रफुल्ल मुद्रा सबको प्रिय लगती, यद्यपि उनकी अन्तरग प्रसन्नता का कारण और रहस्य हमे अविदित ही रहता। डाक्टर भल्ला हम

विद्यार्थियो से बडा स्नेहपूर्ण व्यवहार करते थे। इसलिए क्लोरीन, एमोनिया आदि गैसो की विकट गन्ध से भरी हुई केमिस्ट्री की प्रयोगशाला मे उनकी देख-रेख मे प्रयोग करते हुए हम किसी तरह की ऊब या विरक्ति का अनुभव नही करते।

डॉक्टर भल्ला का पूर्ण विश्वास था कि भारतवर्ष का कल्याण रसायन-शास्त्र की विस्तृत जानकारी के बिना हर्गिज़ नही हो सकता। साथ ही यह भी स्पष्ट था कि उन्हे देश के कल्याण की विशेष चिन्ता है। डॉक्टर भल्ला सचमुच ही स्वदेश-प्रेमी थे। केमिस्ट्री का ज्ञान किस तरह शान्ति तथा युद्ध दोनो समयो मे किसी देश के लिए उपयोगी हो सकता है, इसके उदाहरण वे अक्सर दिया करते। कभी-कभी वे लडाई मे प्रयुक्त होने वाले रासायनिक अस्त्रो का लम्बा-चौडा विवरण देते—सदा की भांति मुस्कराते हुए और वैसे ही मग्न होकर। उस समय वे मुझे बडे रहस्यमय और भयकर भी प्रतीत होते। किन्तु दूसरे ही क्षण जब वे यह बताने लगते कि अस्त्रो के क्षेत्र मे हिन्दुस्तान दूसरे देशो से कितना पीछे है, तो हम कृतज्ञता और चिन्ता से अंकित चेहरो से उनकी ओर ताकते रह जाते।

और उनके पश्चात् डॉक्टर भल्ला अपने उपदेश को दुहराते यदि आप अपने देश की उन्नति और समृद्धि चाहते हैं तो आपको बडे मनोयोग से केमिस्ट्री पढनी चाहिए।

डॉक्टर भल्ला की एक और आदत थी, वे अक्सर धर्म का और धार्मिक लोगो का मजाक उडाते। एक दिन उन्होने एक छात्र के पास भगवद्गीता की प्रति देखी, देखकर वडे ज़ोर से हसे। कहने लगे 'इस देश के लोग वडे लायक और बुद्धिमान हैं। धार्मिक तो है ही, लोभी भी है। इसमे ताज्जुब की कोई बात नही है, धर्मात्मा लोग अक्सर लोभी होते हैं। लेकिन उनके लोभ का क्षेत्र इस दुनिया मे नही, दूसरी दुनिया मे होता है। ये लोग भी नकद के वदले तेरह उधार के फेर मे रहते हैं। यह लोक बने या न बने, लेकिन परलोक ज़रूर बन जाए।

नतीजा यह कि वाहर से एक के वाद दूसरा हमलावर आता रहता है ओर यहा सवका स्वागत होता है। हूण आए, शक आए, मुसलमान आए, मुगल आए और अव विलायत वाले अपना अड्डा जमाए हुए हैं। यार लोग गीता पढने मे मस्त हैं और परलोक वनाने मे मैं कहता हू मिस्टर हरिहर मिश्रा, केमिस्ट्री पढो, केमिस्ट्री, गीता पढने मे कोई फायदा नही।" और एक दिन डॉक्टर भल्ला ने टेविल पर जोर से हाथ मारकर पण्डित हरिहर मिश्रा से कहा—"मिस्टर मिश्रा, मैं कसम खाकर कह सकता हू कि तुम्हारे जिस्म मे कार्वन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, फॉस्फोरस, सल्फर, कैल्शियम वगैरह वीस-पच्चीस तत्त्वो को छोडकर न कोई आत्मा है न परमात्मा, इसलिए गीता-वीता के चक्कर मे न रहा करो, समझे।"

कभी-कभी डॉक्टर भल्ला पूर्वजन्म और कर्म-सिद्धात के विरुद्ध वडे ज़ोर-शोर से तर्क करने लगते। केमिस्ट्री की पढाई के वीच उठ खडे होने वाले इस तरह के प्रसग विद्यार्थियो को दिलचस्प लगते। कुल मिलाकर डॉक्टर भल्ला का व्यक्तित्व मुझे विशेष रोचक जान पडता। यहा तक कि मुझे अपनी सवसे पहली कहानी लिखने की प्रेरणा उन्हीके व्यक्तित्व से मिली। वह कहानी इतनी मनोरजक वन पडी कि भेजते ही एक प्रसिद्ध साप्ताहिक मे छप गई।

दशहरे की छुट्टियो मे माताजी और मैं सुषमा की सगाई मे शरीक होने गए। पिताजी की राय नही थी, लेकिन मुझे सुषमा से इतना स्नेह था कि मैं बिना गए न रह सका।

लखनऊ मे अभी मैंने मुश्किल से पाच महीने बिताए थे, किन्तु बिजनौर पहुचने पर मुझे लगा जैसे मैं हमेशा से लखनऊ मे रहता रहा हू और अब एक अपरिचित शहर मे पहली बार घुस रहा हू। बिजनौर वही था, फिर भी मुझे लगा मानो वह बदल गया है। मुझे अब यह विश्वास करना कठिन हो रहा था कि कुछ महीने पहले मैं वहा रहता था। "कितना भद्दा लगता है अब बिजनौर, और कितनी छोटी जगह है यह," मैंने माताजी से कहा। किन्तु माताजी ने मेरी बात पर विशेष ध्यान नही दिया। शायद लखनऊ मे रह लेने पर भी वे उस नगर से परिचित नही हो सकी थी। वे प्रसन्न थी कि हम लोग अब बिजनौर मे थे, और मैं आश्चर्य से आखें फाड-फाडकर पहचानने की कोशिश कर रहा था कि क्या यह वही बिजनौर है।

हम चाचाजी के घर पहुचे। सुषमा मिली और उसका छोटा भाई सुरेश भी। मुझे मानो यह देखकर अचरज हुआ कि चाचाजी और चाचीजी ठीक वैसे ही थे जैसा हमने उन्हे छोडा था। लखनऊ के

विस्तृत, विविध और रंगीन वातावरण ने मेरे व्यक्तित्व में जो विराट परिवर्तन उत्पन्न कर दिया था उससे चाचा और चाची बेखबर तथा अछूते थे, यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य और निराशा हुई। सुषमा में भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ था, वही उन्मुक्त हास और स्नेह, वही अल्हड़पन। हमारे पहुंचने पर उसे सबसे पहली फ़िकर यह पड़ी कि कब हम लोग खा-पीकर निबटें, और कब ताश खेलने को जुटें। मैंने सुषमा से कहा—"सुषमा अब तुम्हारी शादी होने वाली है, तुम्हें अब छुटपन की आदतें छोड़ देनी चाहिए।" मुझे सचमुच यह महसूस हो रहा था कि मैं अधिक वयस्क, ज़िम्मेदार और गम्भीर बन गया हूं।

रात को माताजी ने सुमित्रा भाभी का ज़िक्र किया, और मैंने जैसे चौंककर कहा—"हां मां, कल मैं ज़रूर मौसीजी के घर जाऊंगा।"

अगले दिन सुबह जब मैं मौसी के घर जा रहा था तो मुझे चारों तरफ का वातावरण असामान्य और अप्रत्याशित-सा लग रहा था। यह भी महसूस हो रहा था कि मैं वही राजन नहीं हूं जो पहले कभी वहां रहता था। लगभग आठ बजे मैं मौसीजी के घर पहुंचा। मौसीजी रसोई के पास वाली सिदरी में बैठी माला फेर रही थीं। भाभी पास के कमरे में थीं। जान पड़ता था अभी-अभी नहाकर आई थीं, उनके चेहरे पर शीतल ताज़गी थी और कुछ गीले बाल पीठ और कंधों पर फैले रहे थे। वे चौड़ी काली किनारी की साड़ी पहने हुए थीं और हल्के नीले रंग का ब्लाउज़। हाथों में मात्र बैंगनी रंग की चूड़ियां थीं और गले में लॉकेट। कानों में बहुत छोटी साइज़ के झुमके केशों के बीच कभी-कभी चमक जाते थे।

मैंने भाभी को देखा, और मानो एक नई दृष्टि से नये रूप में देखा। वे मुझे पहले से काफी बदली हुई जान पड़ीं। लगा, उनके चेहरे में कुछ अधिक परिपक्वता और स्थिरता आ गई है। मानो उनकी आंखें, उनके होंठ, उनकी नाक और गाल, उनके हाथ-पैर और गतियां सब एक नए निजी व्यक्तित्व में सम्पन्न हो गए हैं। और वे मुझे एक अनिर्वचनीय,

रहस्यमय रूप मे आकर्षक लगी।

"आओ देवर, कब आए ?" भाभी ने स्थिर प्रसन्नता से मुस्कराते हुए कहा।

मुझे उनकी आवाज़ भी पहले से बदली हुई जान पडी—मधुर, किन्तु साथ ही गहराई लिए हुए।

"कल सुबह आया था भाभी," मैंने कहा।

"और कौन-कौन आया है ? मौसीजी आई है ?"

"हा, आई हैं। पिताजी को तो छुट्टी नही मिल सकी।"

"अच्छा देवर, तुम उधर कमरे मे जाकर बैठो, मैं अभी आती हू।"

मैं धीरे-धीरे भाभी के सोने वाले कमरे मे पहुच गया। कमरा परिचित भी लगा और कुछ बदला हुआ भी। स्पष्ट ही उसकी व्यवस्था मे कुछ परिवतन हुआ था। सागदान की वे सुन्दर मेज़ें अब वहा नही थी। उनके बदले अब एक साधारण लकडी की चाय की मेज़ पडी थी। दीवार की खुली अलमारी मे कुछ किताबें और एक कहानियो की पत्रिका के दो-तीन अक पडे थे। कमरे मे दो निवाड के पलग थे, जिनमे से एक पर बिस्तर बिछा था। इधर-उधर खूटियो पर कुछ कपडे टगे थे। टेबिल के पास पडी हुई दो कुरसियो मे से एक पर बैठकर मैं खूटी पर टगे भाभी के कुछ कपडो को देर तक देखता रहा। फिर पत्रिका का एक अक उठाकर पढने लगा।

प्राय पन्द्रह मिनट बाद भाभी आई। उनके हाथ मे चाय की ट्रे थी। वे अपने बाल भी सवार चुकी थी। खुले हुए केशो की जगह अब पीठ पर लटकती हुई दो मोटी चोटिया साडी मे से झलक रही थी। इतनी देर मे मैं सिर्फ छोटी कहानी ही पढ पाया था। मुझे भाभी की फुर्ती प⁻ प्रसन्नतापूर्ण विस्मय हुआ।

'बडी जल्दी चाय तैयार कर ली, भाभी, इसकी कोई जरूरत न थी,' मैंने कहा।

'वाह ! जरूरत कैसे नही थी। देवर को क्या रोज़-रोज़ चाय पिलाने

को मिलती है।"

कहकर वे खड़े-ही-खड़े चाय तैयार करने लगीं।

"बैठ जाओ भाभी, खड़ी क्यों हो," मैंने कहा।

वे बैठ गईं। चाय और बिस्कुट मेरी ओर बढ़ाते हुए वे तरह-तरह के प्रश्न करने लगीं, पहले घर वालों के और फिर लखनऊ के सम्बन्ध में। मैं उनके प्रश्नों का उत्तर दे रहा था और साथ ही उन्हें देख भी रहा था।

भाभी का रंग विशेष गोरा था। उसपर काली किनारी विशेष रूप से फब रही थी। और वे बैंगनी चूड़ियाँ, वे इयररिंग, वह सुडौल गले पर लटकती हुई लाकेट—मैं विस्मयविमुग्ध-सा सोच रहा था, भाभी कितनी सुन्दर हैं।

भाभी मुस्करा रही थी, सहज प्रसन्न जान पड़ती थीं। चाय का एक सिप लेकर बोलीं—"क्या देख रहे हो देवर, क्या मैं पहचान में नहीं आ रही हूँ?"

"अरे नहीं भाभी!" मैंने झेंपकर दृष्टि नीची कर ली और जल्दी से चाय के दो-तीन घूँट ले लिए। फिर कहा—"सोच रहा था कि अगर तुम लखनऊ की लड़कियों की तरह फैशन से रहने लगो तो कैसी जान पड़ो।"

"लो सुनो, लखनऊ रहकर देवर को फैशन पसंद आने लगा। भला मैं फैशन किसके लिए करूँगी?"

"नहीं भाभी, सच कहता हूँ। तुम कितनी सुन्दर हो, यह तुम्हें खबर ही नहीं है। लखनऊ में तो बिलकुल मामूली लड़कियाँ ऐसा मेक-अप करती हैं कि बस।"

भाभी गम्भीर हो गईं। बोलीं—"तुम्हें मेक-अप पसन्द है? इस घर में तो किसीको पसन्द नहीं। शुरू-शुरू में यहाँ आने पर एक दिन मैं पाउडर लगाने बैठ गई थी, इसपर माताजी बहुत नाराज हो गईं, न जाने क्या-क्या कहती रहीं। और वह भी मैं इसलिए लगा रही थी कि पसीने से बचाव हो। तब से मैंने कान पकड़ा कि इस घर में अब कभी किसी

चीज का नाम भी न लूगी।"

"मौसीजी वडे पुराने विचारो की है। जाने दो, तुम वैसे ही इतनी अच्छी लगती हो, मेक-अप करोगी तो नजर लग जाएगी।"

"हा जी अव देवर ने वातें वनानी वहुत सीख ली है।" फिर कुछ रुककर कहा—"सच देवर, तुम लखनऊ जाकर वहुत वदल गए हो।"

"क्या वदल गया हू ? पहले मैं पैण्ट पहनकर यहा नही आता था, यही न ?"

"इतना ही नही, और भी वहुत कुछ वदला है। वदलना कोई वुरी वात नही है और लखनऊ वडी जगह भी तो है।" कुछ रुककर कहा—"सच कहना देवर, वहा कभी भाभी की भी याद आती थी ?"

सच वोलना कितना कठिन होता है, यह उस समय स्पष्ट दिखाई दिया। कहा—"याद क्यो नही आती थी, लेकिन कभी-कभी।"

भाभी हसने लगी। दूसरे कमरे मे मञ्जुल के रोने की आवाज सुनाई दी। वह शायद अभी सोकर उठी थी। भाभी उठकर उधर चली और मैं भी चाय की तश्तरी हाथ मे लिए उनके साथ चला।

मञ्जुल अव वडी हो गई थी, और वडी आकर्षक लगती थी। भाभी ने वताया कि वह अव अच्छी तरह घुटनो चलने लगी है। वह मा की गोद मे जाकर वैठ गई थी और वही से मुझे अपनी वडी-वडी काली आखो से देख रही थी। मैंने उसे गोद मे लेने के लिए अपने पास वुलाना चाहा, पर वह आई नही। मैंने सोचा—भाभी जैसी मा को छोडकर वह भला मेरे पास कैसे आ सकती है!

घर पहुचकर मैंने माताजी से कहा—"मा! भाभी की मुनिया अव वडी हो गई है, घुटनो चलती है, वडी प्यारी लगती है।"

"हा वेटा, मा सुन्दर है तो लडकी भी जरूर सुन्दर होगी।"

"मा, तुम भाभी को वुलाओगी नही, कल वुला लो न।"

"वुला लूगी, कल तो मैं ही जाने की सोच रही थी। सगुन के दिन ही वुलवा लूगी।"

"नही मा, तुम जाकर क्या करोगी ? भाभी को कल बुला लो और फिर उस दिन भी बुला लेना।"

"क्यो रे, मैं अपनी जीजी के पास नही जाऊ? तुझे क्यो बुरा लगता है?"

"मुझे क्यो बुरा लगेगा, जाओ, जरूर जाओ। डालडा की पूडी खाना और नुकसान करे तो डॉक्टर से दवा मगवा लेना।"

"हा रे, बहुत बाते करना सीख गया है। आजकल अच्छा घी मिलता है ही नही," कहकर वे खासने लगी। मा को दमे की हलकी शिकायत थी और वे डालडा से विशेष परहेज करती थी।

थोडी देर मे बोली—"मैं जाऊगी, पर खाना नही खाऊगी। कह दूगी व्रत है। कल एकादशी भी है।"

"एकादशी के दिन झूठ बोलोगी, मा!"

"बाबा रे, इस लडके से तो किसी तरह भी छुटकारा नही है!"

अगले दिन दोपहर के बाद से ही मा मौसी के घर जाने की चर्चा करने लगी। मैं समझता था कि मुझे उनके साथ जाना होगा और उस सम्भावना से प्रसन्न भी था, किन्तु ऊपर से उदासीनता का भाव बनाए रहा। जब मा चलने को तैयार हुई तो मैंने बनावटी खीझ से कहा—"तो तुम जाओगी जरूर मा, मौसी तुम्हारी सगी बहिन तो है नही।"

"लो, सुनो इसकी बाते, जीजी मेरी सगी बहिन नही है, जैसे मेरी और दो-चार बहिनें बैठी हैं! तू चलेगा कि नही, बोल?"

मेरा दिल धडकने लगा। फिर भी हिम्मत करके कहा—"मैं नही जाऊगा, मा।"

"क्यो नही जाएगा?"

"क्या फायदा, वहा भाभी को फुरसत होती ही नही। कहा था यहा बुला लो।"

"हू, तो तुझे सिर्फ भाभी से ही मतलब है, मौसी अपनी नही है।"

मैं चाहता था कि डालडा वाली बात दुहरा दू, पर चुप रह गया। मा ने फिर अनुरोध किया—"चला चल बेटा, वहा अपना घर नही है

न कि भाभी को बार-बार बुलाऊ, सगाई के दिन ही बुला लूगी।"

अन्तिम बात धीरे से कही गई थी। मा पर एहसान जताता हुआ मैं चलने को तैयार हो गया। साथ मे मैंने डाक्टर भल्ला वाली कहानी भी ले ली।

मौसी के घर के उस दिन के कई दृश्य बडी स्पष्टता से स्मृति-पट पर अकित हो गए हैं। आकाश मे हलके सफेद अभ्र-खड इधर-उधर तैर रहे थे, जिसके कारण धूप अधमुदी हो रही थी। इसलिए हम लोग चार-सवा चार बजे ही मौसी के घर पहुच गए थे। देखा कि भाभी अपने छोटे देवर और ननद को बाजार जाने के लिए तैयार कर रही हैं। श्यामू तैयार हो चुका था और विमला का केश-विन्यास किया जा रहा था। मा को देख-कर मौसी ने 'आओ, आओ' कहकर स्वागत किया और जब मा ने मुस्करा-कर पूछा कि क्या हो रहा है तो वे जैसे सफाई देते हुए बोली—"जब से वह आई है बच्चो को खिलाने-पिलाने से लेकर दुकान के लिए तैयार करने तक का सारा जिम्मा इनने अपने ऊपर ही ले लिया है। बच्चे भी अपनी भाभी से ही खुश रहते है। और इस विमला की तो सुनो, कहती है तुम्हे बाल बनाने का सलीका नही है, मैं भाभी से ही बाल बनवाऊगी।। हा, यह जरा-सी लडकी ऐसी बाते करती है। मैं नहलाने ले जाऊ, या बालो मे कघी करने लगू, तो एकदम चीखने लगती है, और अब देखो कैसी चुपचाप खडी है। भाभी के कघी करने से उसे जरा भी तकलीफ नही होती।"

विमला के सिर मे कघे को परिचालित करती हुई भाभी मुस्करा रही थी। चेहरे से लगता था कि विमला को सचमुच ही कष्ट हो रहा है, लेकिन वह मुह से उफ भी न करती हुई चुपचाप खडी थी, जैसे वह अभी से यह समझ गई हो कि दुनिया के सामने सुन्दर दीख सकने के लिए सख्त टिनिप्निन की अपेक्षा होती है।

थोडी ही देर मे भाभी ने विमला की दो छोटी किन्तु घनी चोटिया रिबन से बाध-बूधकर नजाकत से पीठ पर लटका दी। कुछ ही देर मे

दुकान से एक आदमी आकर बच्चो को लिवा गया। नौकर की विद्यमानता और बालको के कपडे आदि से मैंने अनुमान किया कि मौसी की आर्थिक स्थिति पहले से सुधर गई है।

बच्चो से निबटकर भाभी आकर थोडी देर मा के पास बैठी। भाभी सहारनपुर जिले की रहने वाली थी। वहा के सम्बन्धियो तथा बिरादरी के सदस्यो एव उनके ब्याहने योग्य लडके-लडकियो के बारे मे माताजी काफी देर तक भाभी से न जाने क्या-क्या पूछती रही। मुझे इतना समय काटना कठिन हो गया, अन्त मे बडी मुश्किल से मैंने भाभी को मा से छुट्टी दिलाई और उन्हे मौसी से बातें करते छोड भाभी को उनके सोने के कमरे मे लिवा गया। वहा पहुचकर मैंने उनसे कहा—"भाभी, तुम इतना काम क्यो करती हो, क्या मौसीजी अपने लडके-लडकियो की चिन्ता नही कर सकती?"

"गन्दे फिरते हुए बच्चे मुझे अच्छे नही लगते," भाभी ने कहा, "और बच्चो का काम करने की मुझे आदत भी है, अपने घर पर छोट भाई-बहनो को मुझे ही सभालना पडता था।"

कुछ देर बाद भाभी ने कहा—"तुम्हारे भैया का पेट बहुत खराब रहता है। कभी-कभी बडे जोर का दर्द उठता है। मैंने कहा था लखनऊ मौसाजी के घर चले जाओ, वहा अच्छे-अच्छे डाक्टर हैं। पर वे सुनते ही नही, तुम ही कह देखना।"

मैंने कहा—"मैं जरूर कहूगा।"

मुझे यह सोचकर क्षोभ और आश्चर्य हुआ कि भाभी को छोट बच्चो की ही नही, भैया की भी चिन्ता करनी पडती है। भला भैया खुद अपने पेट की चिन्ता क्यो नही कर सकते? नही करते तो नही करे, भाभी क्यो उनके लिए परेशान है। मैं जानता था कि किशन भैया भाभी के पति है, फिर भी मुझे यह उचित नही लगता था कि भाभी उनकी इतनी ज्यादा परवाह करें।

मैं भाभी को अपनी कहानी सुनाने को बेचैन था। कुछ ही क्षण

वाद उनसे कहा—"मैं तुम्हे सुनाने के लिए अपनी एक कहानी लाया हू भाभी, सुनोगी ?"

"ज़रूर सुनूगी, भला तुम कहानी लिखो और मैं न सुनू, यो भी मुझे कहानिया अच्छी लगती हैं।"

कहानी सुनाने से पहले मैंने भाभी को डाक्टर भल्ला का सक्षिप्त परिचय दिया, क्योकि कहानी का मुख्य पात्र उन्हीका प्रतीक था। परिचय देकर पूछा—"तुम्ही वताओ भाभी, कोई व्यक्ति क्लोरीन, पोटेशियम और गन्धक के तेजाव जैसी चीजो मे इतनी रुचि कैसे ले सकता है ? मैं कभी-कभी सोचता हू कि डॉक्टर भल्ला की खोपडी मे इन्ही चीज़ो की गन्ध भरी रहती है।"

"और तुम्हारे मस्तिष्क मे क्या भरा रहता है—लखनऊ की फैशनेवल लडकिया ?" भाभी ने हसकर कहा।

"अरे नही, तुम तो हसी करती हो। मैं कह रहा था कि गन्धक और पोटेशियम मे ऐसा रोचक तत्त्व क्या है, जो डाक्टर भल्ला को मग्न बना देता है ?"

'वताऊ," भाभी ने कुछ सोचकर कहा, "गन्धक और पोटेशियम मे वही तत्त्व है जो गृहिणियो के लिए नमक-तेल-मसाले मे होता है, बढई के लिए अपने औज़ारो मे, और सास तथा पति के लिए घर की वहू मे।"

"क्या मतलव ?" मैंने चकित होकर पूछा।

"मतलव यह कि जो चीज़ हमारी अधिकार और शक्ति की भावना को पुष्ट करती है, हमारे इशारो पर चलती है, वह हमे रोचक लगती है समझे ?"

वात चुभती हुई थी, कुछ-कुछ जरूर ही समझ मे आई। लेवोरेटरी मे 'इन्स्ट्रूमेंट्स' का सजोने और उनका अधिकारपूर्वक उपयोग करने मे भी शायद इसीलिए मजा मिलता है। लेकिन भाभी की एक वात मुझे खटकी। उन्होंने कहा था—'समझे ?' जैसे मैं विलकुल अवोध हू ! खुद मुझसे

छह महीने ही तो बडी हैं ! और मैं कहानी सुनाकर अपनी योग्यता तथा समझदारी का सबूत देने को व्यग्र हो उठा। मैंने कहानी सुनानी शुरू की।

वह दृश्य भूलने लायक नही है। मैं कहानी सुना रहा था और भाभी हस रही थी, हसते हुए लोट-पोट हो रही थी। इतने मुक्त भाव से हसते मैंने उन्हे कभी नही देखा था। उनके स्वच्छ, सुन्दर दातो की वह शुभ्र हसी कितनी मोहक थी ! मुझे आभास था, और शायद भाभी को भी आभास था, कि हसने की आवाज मा और मौसी तक पहुच रही है। मैं इसे अपनी कहानी की सफलता समझ रहा था। भाभी रह-रहकर हसी पर नियन्त्रण करने का प्रयत्न कर रही थी।

मैं कहानी समाप्त कर रहा था। सहसा मैंने पाया कि भाभी की आखें दरवाजे की ओर पहुच गई हैं और वह यकायक गम्भीर बन गई है। मेरी दृष्टि उधर की ओर मुडी, देखा कि कमरे की चौखट मे भैया हरीकिशन खडे हैं।

क्षण-भर मे वातावरण स्तब्ध हो गया। बाद को मुझे इस स्तब्धता पर आश्चर्य हुआ। वह मानो इस बात की द्योतक थी कि उससे पहले हम लोग कोई अनुचित काम कर रहे थे।

भैया के रोष-कलुष चेहरे और आखो का किसी तरह सामना करके मैंने उन्हे नमस्ते की। हाथ के सकेत से ही उसका उत्तर देते हुए वह कह रहे थे—"शरीफ घर की औरतो के लिए इतने ज़ोर से हसना ठीक नही, यह भी ध्यान नही कि घर मे बडी-बूढी मौजूद है और मेहमान भी।"

भाभी सहसा उठकर खडी हो गई थी। लज्जा या सकोच के प्रदर्शन के लिए उन्होंने अपना मुह दीवार की ओर कर लिया था। उस समय उनका चेहरा एकदम सुस्त और श्रीहीन हो गया था।

मुझे किशन भैया का यह असमय आना और फिर ऐसी बातें कहना बहुत बुरा लगा। एकाएक कहानी का बना-बनाया वातावरण छिन-

भिन्न हो गया। मुझे कुछ वैसा ही लग रहा था जैसा सिनेमा मे खल पात्र के हीरो-हीरोइन के मिलन मे बाधा डाल देने पर लगता है। सारा मजा किरकिरा हो गया, भाभी से कहानी की दाद मिलने का अवसर एकदम ही खो गया। मैंने परेशानी और असमजस से किशन भैया की ओर देखा। खास किस्म की घृणा और क्रोध से उनका चेहरा विकृत हो रहा था।

"मैं भाभी को कहानी सुना रहा था, भैया," मैंने साहस बटोरकर कहा। किन्तु उन्होंने कोई उत्तर न दिया, योही जलती हुई नज़र से भाभी की दिशा मे देखते रहे। मेरे मन में गुस्सा भरने लगा, भाभी की और अपनी यह सम्मिलित अवज्ञा मुझे असह्य हो रही थी। मैं सहसा उठ खडा हुआ और भैया के पास से गुज़रता हुआ कमरे के बाहर चला गया।

मा और मौसी पहले की तरह रस लेकर बाते कर रही थी।

"भाभी से बातें हो चुकी ?" मा ने परिहास के स्वर मे पूछा।

"कहा मा, मैं तो अपनी कहानी सुना रहा था।"

"अच्छा, अच्छा।" और फिर मौसी के अभिमुख हो कहा—"राजन को अपनी भाभी बहुत पसन्द है। जब से यहा आया है मुझसे भाभी की ही चर्चा करता है।"

कुछ देर बाद किशन भैया कमरे से निकले और बिना किसीसे बात किए, बूट से खट-खट करते दुकान चले गए।

धीरे-धीरे कदम रखता हुआ मैं फिर भाभी के कमरे मे पहुच गया। देखा भाभी दीवार से सिर सटाए खडी है और आखो से टप-टप गिरते आसुओ को आचल से पोछ रही हैं।

मैंने करीब जाकर धीमे से कहा—"भाभी!"

भाभी वैसे ही खडी रही। मैंने उनसे बैठ जाने का अनुरोध किया। कुछ क्षण बाद हाथ पकडकर उन्हे पलग के तकिये के सहारे बिठा दिया और स्वय भी फुट-भर के फासले पर बैठ गया।

भाभी का मुह खुला था, कुछ देर पहले चबाए हुए पान की लाली

अभी तक निम्नोष्ठ पर बाकी थी। उसकी विषमता मे अधर का तरल-कोमल अभ्यन्तर और शुभ्र दशन-पंक्ति विशेष आकर्षक लग रहे थे। आखो की निचली कोरो मे रह-रहकर कुछ बूदें ढुलक पडती थी।

मैंने दो तीन बार कहा—"भाभी, भाभी," पर कोई उत्तर न मिला। फिर मैंने कहा, "भाभी, मुझसे नाराज हो ?" उत्तर मे उन्होने अश्रु पोछते हुए कहा, "नही।"

"मेरी समझ मे नही आता, भाभी, कि भैया इतने क्यो बिगड रहे थे। हसना ऐसा बडा अपराध तो नही है।"

"इस घर मे सब बातें अपराध हैं," भाभी ने फिर मुह पोछकर किंचित् स्वस्थ होते हुए कहा।

"नही भाभी, वह कोई अपराध नही है, मैं भैया की शिकायत करूगा।"

"किससे शिकायत करोगे, शिकायत से फायदा ही क्या है ?" कहते-कहते भाभी ने फिर आचल मे मुह और आखें साफ की।

"नही भाभी, यह ठीक नही। तुम्हे इस तरह दबकर नही रहना चाहिए। मैं कहता हू, इस वक्त हम लोगो का कोई कसूर नही था, सारा कसूर भैया का था।"

"हिन्दुस्तान मे पतियो का कोई कसूर नही होता, सारा कसूर स्त्रियो का होता है।"

"नही भाभी, यह बिलकुल गलत है।" फिर कुछ रुककर मैंने कहा—"सच कहता हू भाभी, भैया तुम्हारे योग्य नही थे। तुम्हे उनसे शादी नही करनी चाहिए थी। तुमने शादी क्यो की, भाभी ? भैया न खास पढे-लिखे हैं, न कोई अच्छी बातें ही करते हैं।"

"शादी मैंने नही की देवर, हमारे देश मे लडकियो की शादी कर दी जाती है। फिर मेरे पिताजी रईस न थे, दूसरा कौन मुझसे शादी करता ?"

"नही भाभी, यह गलत है तुमसे तो कोई भी शादी कर लेता।

तुम्हारे पिताजी ने कोशिश नही की, उन्हे कोशिश करनी चाहिए थी।"

"तुम अभी जानते नही देवर " कहकर भाभी सहसा बहुत उदास हो गई।

"भाभी, मैं छोटा जरूर हू, पर इतना अबोध नही हू। क्या मैं नही जानता कि आजकल लडके वाले तिलक मागते हैं मेरे पिताजी खुद कहते है कि वे कम से कम पाच हजार का तिलक लेकर मेरी शादी करेंगे। लेकिन पिताजी के अतिरिक्त क्या मेरी अपनी पसन्द का कुछ भी महत्त्व नही होगा ?'

भाभी कुछ देर चुप रही, फिर वोली—"तुम जाते तो मुझे विना तिलक लिए पसन्द कर आते, है न ?"

भाभी का परिवर्तित 'मूड' देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। कहा—"इसमे तुम्हे शक भी है क्या ?"

भाभी ने कोई उत्तर नही दिया, चुपचाप सामने दीवार की दिशा मे देखती रही। मैंने कहा—"कुछ भी हो भाभी, मैं इसके सख्त खिलाफ हू कि तुम भैया की उचित-अनुचित सभी बातें सहो।"

"दूसरा चारा ही क्या है ? उनके घर मे रहूगी तो सभी कुछ सहना पडेगा।"

' नही भाभी, आखिर तुम्हारा भी तो कुछ अधिकार है।"

कहने को मैंने कह दिया, फिर सोच मे पड गया। सचमुच ही भाभी एकदम बेवस है, सब कुछ सहे नही तो क्या करें ? मुझे भाभी की इस अनगत, अयुक्त विवशता पर बडा क्रोध हुआ।

कुछ क्षण रुककर कहा—"सच भाभी, तुम्हे अपने अधिकार के लिए जरूर लडना चाहिए। इस तरह सहते जाना एकदम गलत है, अन्याय है, मैं भैया से भी कहूगा, हा "

' और भैया न माने तो ?" भाभी ने अर्ध-गम्भीर भाव से कहा।

' तो ? " मैं ऐसे स्वर मे बोल उठा जैसे मैं इस प्रश्न के लिए तैयार न था। क्षण-भर बाद कहा—"कुछ दिनो रुकी रहो भाभी, मैं जरा कमाने

अभी तक निम्नोष्ठ पर वाकी थी। उसकी विषमता मे अधर का तरल-कोमल अभ्यन्तर और शुभ्र दशन-पंक्ति विशेष आकर्षक लग रहे थे। आखो की निचली कोरो मे रह-रहकर कुछ बूदे ढुलक पडती थी।

मैंने दो तीन वार कहा—"भाभी, भाभी," पर कोई उत्तर न मिला। फिर मैंने कहा, "भाभी, मुझसे नाराज हो ?" उत्तर मे उन्होने अश्रु पोछते हुए कहा, "नही।"

"मेरी समझ मे नही आता, भाभी, कि भैया इतने क्यो विगड रहे थे। हसना ऐसा वडा अपराध तो नही है।"

"इस घर मे सब वातें अपराध हैं," भाभी ने फिर मुह पोछकर किंचित् स्वस्थ होते हुए कहा।

"नही भाभी, वह कोई अपराध नही है, मैं भैया को शिकायत करूगा।"

"किससे शिकायत करोगे, शिकायत से फायदा ही क्या है ?" कहते-कहते भाभी ने फिर आचल से मुह और आखें साफ की।

"नही भाभी, यह ठीक नही। तुम्हे इस तरह दवकर नही रहना चाहिए। मैं कहता हू, इस वक्त हम लोगो का कोई कसूर नही था, सारा कसूर भैया का था।"

"हिन्दुस्तान मे पतियो का कोई कसूर नही होता, सारा कसूर स्त्रियो का होता है।"

"नही भाभी, यह विलकुल गलत है।" फिर कुछ रुककर मैंने कहा—"सच कहता हू भाभी, भैया तुम्हारे योग्य नही थे। तुम्हे उनसे शादी नही करनी चाहिए थी। तुमने शादी क्यो की, भाभी ? भैया न खास पढे-लिखे है, न कोई अच्छी वातें ही करते है।"

"शादी मैंने नही की देवर, हमारे देश मे लडकियो की शादी कर दी जाती है। फिर मेरे पिताजी रईस न थे, दूसरा कौन मुझसे शादी करता ?"

"नही भाभी, यह गलत है तुमसे तो कोई भी शादी कर लेता।

तुम्हारे पिताजी ने कोशिश नही की, उन्हे कोशिश करनी चाहिए थी।"

"तुम अभी जानते नही देवर " कहकर भाभी सहसा वहुत उदास हो गई।

"भाभी, मैं छोटा ज़रूर हू, पर इतना अवोध नही हू। क्या मैं नही जानता कि आजकल लडके वाले तिलक मागते हैं मेरे पिताजी खुद कहते है कि ये कम से कम पाच हज़ार का तिलक लेकर मेरी शादी करेंगे। लेकिन पिताजी के अतिरिक्त क्या मेरी अपनी पसन्द का कुछ भी महत्त्व नही होगा ?"

भाभी कुछ देर चुप रही, फिर वोली—"तुम जाते तो मुझे विना तिलक लिए पसन्द कर आते, है न ?"

भाभी का परिवर्तित 'मूड' देखकर मुझे वडी प्रसन्नता हुई। कहा—"इसमे तुम्हे शक भी है क्या ?"

भाभी ने कोई उत्तर नही दिया, चुपचाप सामने दीवार की दिशा मे देखती रही। मैंने कहा—"कुछ भी हो भाभी, मैं इसके सख्त खिलाफ हू कि तुम भैया की उचित-अनुचित सभी वातें सहो।"

"दूसरा चारा ही क्या है ? उनके घर मे रहूगी तो सभी कुछ सहना पडेगा।"

"नही भाभी, आखिर तुम्हारा भी तो कुछ अधिकार है।"

कहने को मैंने कह दिया, फिर सोच मे पड गया। सचमुच ही भाभी एकदम वेवस हैं, सव कुछ सहे नही तो क्या करें ? मुझे भाभी की इस असगत, अयुक्त विवशता पर वडा क्रोध हुआ।

कुछ क्षण रुककर कहा—"सच भाभी, तुम्हे अपने अधिकार के लिए ज़रूर लडना चाहिए। इस तरह सहते जाना एकदम गलत है, अन्याय है, मैं भैया से भी कहूगा, हा "

"और भैया न माने तो ?" भाभी ने अर्ध-गम्भीर भाव से कहा।

"तो ? " मैं ऐसे स्वर मे वोल उठा जैसे मैं इस प्रश्न के लिए तैयार न था। क्षण-भर वाद कहा—"कुछ दिनो रुकी रहो भाभी, मैं ज़रा कमाने

लगू, तब कभी भैया तुमने ऐसा व्यवहार नही कर सकेंगे।"

वय सन्धि के काल मे हममे कैसी सहज उदारता होती है, कैसी सहज उमग और सहज आत्मविश्वास! उस समय तक हम जीवन की कठोर वास्तविकता से न परिचित ही होते हैं, न उसका हिसाब करने के अभ्यस्त। आज जब मैं उस दिन की उन सभी बातो को याद करता हू तो सहम जाता हू। कहा तक मेरी बातो ने भाभी की मनोवृत्ति को प्रभावित किया इसकी नाप-जोख करने का अब कोई तरीका नही है। कभी-कभी अपनी जिन्दगी के उन क्षणो को, जब मैंने भाभी से वैसी बाते की थी, याद करके रोना आता है, तो कभी सोचता हू—उस समय मैंने जो कुछ कहा था वह तो ठीक ही था, वह मानवोचित था, मेरे उगते हुए यौवन और जागते हुए आत्मविश्वास के अनुरूप था। उसके लिए पश्चात्ताप करना व्यर्थ ही नही, गलत भी है। पछतावे का असली विषय तो मेरी बाद की जिन्दगी और व्यवहार है, जिसका दुर्लेग मुझे क्रमश आपके सामने उपस्थित करना है।

मेरे उक्त उद्गार के उत्तर मे भाभी ने बडे शान्त भाव से कहा था—"भाग्य का लिखा कोई मिटा नही सकता देवर, पिछले जन्म मे मैंने कर्म ही बुरे किए होगे।"

"नही भाभी," मैंने कुछ तीव्र स्वर मे कहा था, "पिछले जन्म और उसके कर्मों मे मेरा एकदम विश्वास नही है। हमारे देश वाले आगे-पीछे के जीवन की इतनी चिन्ता करते है कि मौजूदा जिन्दगी को भूल ही जाते है। भला इसका क्या सबूत है कि पिछले जन्म मे तुमने खराब काम किए थे? बुरे कर्म करने वालो को क्या ऐसा स्वभाव और ऐसा व्यक्तित्व मिल सकता है जैसा तुम्हे मिला है? जब यह साफ दिखाई देता है कि तुम्हारे कष्ट का कारण किसी दूसरे का व्यवहार है, तो फिर यह मानने की क्या जरूरत है कि स्वय तुमने कभी बुरे कर्म किए थे?"

भाभी के सामने मैं जो तर्क रख रहा था वह—मुझे अच्छी तरह

याद है—यह वही तर्क था जिसे डॉक्टर भल्ला अक्सर कर्म-सिद्धान्त के विरुद्ध दुहराया करते थे। "मान लो," वे कहा करते थे, "मान लो कि मिस्टर 'क' ने लाठी से मिस्टर 'ख' का सिर फोड दिया। तब 'ख' की तकलीफ का सबब किसका कर्म है, 'क' का या स्वय 'ख' का ? जाहिर है कि यह सबब 'क' का कर्म—लाठी मारना—है, तभी तो पुलिस 'क' को पकड लेती है। ऐसी हालत मे यह कल्पना करना कि 'ख' के दुःख का कारण 'ख' के पिछले जन्म के कर्म हैं, बिल्कुल फिजूल है। ऐसी फिजूल बात गुलाम हिन्दुस्तानियो के दिमाग मे ही आ सकती है, और वह एकदम अन्साइण्टिफिक (अवैज्ञानिक) है।" डॉक्टर भल्ला की ये बातें सुनकर कुछ विद्यार्थी प्रसन्न होते हुए तालिया पीट देते थे। उस वक्त गावो से आने वाले कुछ पुराने विचारो के छात्रो के चेहरे फक पड जाते थे।

उस दिन मैंने खूब स्पष्ट रूप मे यह तर्क भाभी के सामने रख दिया था। उस समय भाभी क्या सोच रही थी, कुछ सोच भी रही थी या नही मुझे मालूम न हो सका। शायद मेरी इसमे रुचि भी न थी। मेरी दिलचस्पी सिर्फ यह साबित करने मे थी कि मैं अब नादान या नाबालिग नही था।

उस समय मैंने यह लक्ष्य नही किया कि ईश्वर की सत्ता मे अविश्वास प्रगट करने वाली कुछ मास पहले की भाभी और उस वक्त की भाग्य-वादिनी भाभी की आत्मविश्वास की भावना तथा मनोबल मे कितना अन्तर पड गया था।

फिर भी मैंने भाभी को समझाया था कि ईश्वर को न मानने और पुनर्जन्म तथा कर्म-फल को मानते रहने मे विरोध है, क्योकि कर्म अपना फल आप ही नही दे लेते, हत्या की क्रिया स्वय हत्यारे के प्राण नही ले लेती। और डॉक्टर भल्ला के अनुकरण द्वारा तार्किक तथा विचारक कहलाने के लोभ ने कहा था—"मेरे विचार मे तो भाभी, आगे-पीछे के जन्मो की चिन्ता न करके हमे अपने इसी जीवन को सुखी बनाने का

प्रयत्न करना चाहिए।"

बातचीत के इस सिलसिले मे भाभी प्राय मूक और गम्भीर बनी रही थी—एक विचित्र उदासीनता की मुद्रा मे मेरी ओर देखती रही थी। अन्त मे जब मा के आवाज देने पर मैं चलने को हुआ तो उन्होने कहा, "अब कब आओगे, देवर ?" मैंने यह महसूस करके कि भाभी ने मेरे ज्ञान और तर्कना-शक्ति की उचित दाद नही दी, किंचित् भिन्न स्वर मे उत्तर दिया—"अब तो मेरा आना नही हो सकेगा भाभी, सगाई के दिन तुम आओगी न ?"

भाभी ने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति प्रगट करते हुए कहा—"अगर कोई अडचन न हुई तो आऊगी।"

"अडचन-वडचन नही, तुम्हे जरूर आना होगा, समझी ? नही तो मुझे आकर तुम्हे खीचकर ले जाना पडेगा।"

मौसी के घर से चलते-चलते मैं अपना तर्क और चपलता भूलकर गम्भीर बन गया। मेरा चित्त अपनी सम्पूर्ण गहराई मे उद्विग्न और आन्दोलित हो उठा। मैं कभी किशन भैया के बारे मे सोचता, कभी भाभी के और कभी दोनो के सम्बन्ध पर विचार करता।

मैं किशन भैया पर बहुत रुष्ट था। पति-पत्नी के सामाजिक सम्बन्ध और पति के विशिष्ट अधिकारो को, मैं सम्भवत अभी ठीक से नही समझता था। मैं नही जानता था कि पति अपनी स्त्री को ससार के किसी भी दूसरे पुरुष या नारी से बात करने से रोक सकता है, कि किशन भैया, यदि वे चाहे तो, मेरा भाभी के पास आना-जाना एकदम बन्द कर सकते हैं। इसके विपरीत मेरी यह भावना थी कि क्योकि मुझे भाभी से ज्यादा स्नेह है, इसलिए उनपर मेरा ही अधिक अधिकार होना चाहिए। मैं इस बात से नाराज था कि किशन भैया भाभी पर इतना अधिकार जमाते है, और, बिना किसी अपराध के, उन्हे इस बुरी तरह डाट देते है। मुझे यह सोचकर बुरा लग रहा था कि भैया हरीकृष्ण जब चाहे तब भाभी के पास पहुच सकते है, पहुचते है, कि वे और भाभी एक घर मे रहते है।

यह नही कि मैं पति-पत्नी के सम्बन्ध के बारे मे एकदम अबोध था,

किन्तु उस सम्बन्ध को मैं न्यूनाधिक बाहर से ही जानता था। उसके विभिन्न रूपों और पहलुओं पर जैसे मेरी आज पहली बार दृष्टि गई थी, और उससे असन्तुष्ट था। मेरा अन्तर्मन शायद इस स्थिति को गवारा नहीं करना चाहता था कि किशन भैया और भाभी में पति-पत्नी का सम्बन्ध हो।

इस अप्रिय सम्बन्ध से हटकर मेरी चित्त-वृत्ति केवल भाभी पर अटक जाती, मानो पहली बार मैंने सचेत भाव से अनुभव किया था कि भाभी केवल भाभी नहीं हैं, अपितु नारी हैं। भाभी का हँसना और फिर उदास होना दोनों ही के चित्र बड़ी स्पष्टता से मेरे सम्मुख आते और मैं एक अनिर्वाच्य बेचैनी का अनुभव करता। मैं चाहता कि उन चित्रों को बार-बार अपनी कल्पना के सामने लाऊँ और उनका भावन करूँ। भोजन करके रात को जब मैं बिस्तर पर लेटा तो बार-बार वही चित्र मेरे सामने खिंचकर आने लगे। जैसी कि उसकी आदत थी, सुषमा बार-बार आकर मुझसे उलझना चाहती, बातें करना चाहती, हँसी-मजाक करना चाहती। कई बार मैंने उसे डाँटा और कहा कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है। और जब माँ ने आकर पूछा कि क्या बात है तो मैंने कहा—"सिर में दर्द हो रहा है माँ, मुझे सोने दो।"

लेकिन मेरी आँखों में नींद नहीं थी। क्यों भाभी भैया की उचित-अनुचित सब बात सुनने को बाध्य हों, यह प्रश्न मेरे मन में रह-रहकर उठ रहा था और मुझे उसका कोई समाधान नहीं मिल रहा था। कभी-कभी मैं सोचता—"क्या भाभी इच्छा करने पर भी भैया से जुदा नहीं हो सकतीं? और क्या वे हमेशा मेरे साथ नहीं रह सकतीं? क्या मुझे सदैव भाभी के साथ चाय पीने को नहीं मिल सकती? उनके साथ आमने-सामने बैठकर चाय पीना कितना भला लगता है!"

निःसन्देह वह वयःसन्धि की हलचल और मोह था जिसके मन में नारी का दुर्निवार, रहस्यपूर्ण आकर्षण था, किन्तु उसमें भाभी के ममत्व का भी पुट था। मैं बार-बार सोचता मेरी इतनी अच्छी भाभी ऐसी

खराब परिस्थितियो मे क्यो पडी है? और कल्पना करता, अब कभी किशन भैया ने मेरे सामने वैसी बाते की तो मैं अपने को हरगिज नही रोकूगा, जरूर ही उनसे लड जाऊगा। मेरे लिए उनसे दबने का कोई सवाल ही नही, पढने-लिखने मे तो मैं अभी ही उनसे आगे निकल चुका हू। मैं हाथ से उन्हे बाहर की ओर ठेल दूगा, कहूगा—'जाकर शीशे मे अपना मुह तो देखो, भाभी के मुख से उसकी तुलना करो, या यह कि बाहर जाकर एक गिलास ठडा-ठडा पानी पी लो।' और अगर वे इस-पर भी न माने तो नीचे जाकर मौसी को पकड लाऊगा। मौसी जरूर ही भैया को समझा देगी। मौसी कितनी ही बुरी हो, पर मेरी बात नही टाल सकती। किशन भैया से तुलना करते हुए मेरे नियम से पास होने की, और अच्छे नम्बरो से पास होने की, वे हमेशा तारीफ करती रही है। "हमारा किशन पढने मे तेज नही है, इसे तो दुकान का काम ही देखना पडेगा," वे पहले से कहती आई है। और वे यह भी जानती है कि किशन भैया को गुस्सा ज्यादा है, छोटी-छोटी बातो पर व्यर्थ ही नाराज हो जाने की आदत है।

उस समय मैं यह नही समझ सका कि किशन भैया की उन दिनो बढी हुई ऐंठ का एक प्रमुख कारण उनकी पिछले महीनो की व्यापारिक सफलता थी।

भैया के विरुद्ध ऊपर के सकल्प करने के साथ-साथ मैं यह भी कल्पना कर रहा था कि अगली बार भाभी के साथ चाय पीते हुए मैं क्या करूगा।

बिजनौर मे हमारे ठहरने के अब चार-पाच दिन ही रह गए थे। इच्छा रहते हुए भी मैं अगले दो दिन भाभी के पास पहुचने का कोई बहाना नही पा सका। चौथे दिन सगनी की रस्म मे सम्मिलित होने भाभी आई। यो तो सुषमा को उन्होने पहले भी देखा होगा, किन्तु उससे बाकायदा परिचय होने का उनके लिए यह पहला अवसर था। सुषमा से मैंने पहले ही कह रखा था कि "भाभी तो बहुत ही अच्छी है,

उनसे वात करके तेरी तबीयत खुश हो जाएगी। ताश बहुत बढिया खेलती हैं एक ही दिन मे तुझे लगने लगेगा कि वे तेरी भी भाभी हैं।"

मेरा अनुमान ठीक ही निकला। भाभी घण्टे-भर के भीतर सुषमा उनसे ऐसी घुल-मिल गई जैसे उन्हे बरसो से जानती हो।

तीसरे पहर भाभी, सुषमा और मैं एकान्त कमरे मे एकसाथ नाश्ता करने बैठे। चाय मैंने और सुषमा ने मिलकर तैयार की थी, और माताजी तथा चाचीजी रसोई मे दूसरी चीजे तैयार कर रही थी, वहा से सामान लाने का काम सुषमा ने अपने ऊपर ले लिया था।

भाभी के साथ चाय पीते-पीते मैं सोच रहा था—किस तरह अपनी पूर्व-दिनो की कल्पनाओ को वास्तविकता मे परिणत करू। सुषमा जैसे ही किसी काम से रसोई की ओर जाती, मैं अपनी योजनाओ को कार्यान्वित करने की कोशिश करता। एक बार भाभी ने जैसे ही अपना प्याला मेज पर रखा, मैंने उसे उठाकर हसते-हसते, उसमे से दो-तीन 'सिप' ले लिए और फिर प्याला चुपचाप अपने और भाभी के बीच मे रख दिया। भाभी ने कनखियो से देखा, मुस्कराई, और फिर उठकर उसी प्याले से पीने लगी। इसी तरह एक-दो बार मैंने उनकी प्लेट मे से सामान उठाकर खा लिया।

"चुराने की जरूरत नही है देवर, मैं खुद दे देती हू," कहकर भाभी ने एक बार आलू की टिकिया का एक बडा टुकडा मेरे मुह मे रख दिया। मैंने शीघ्र ही उसका प्रतिकार कर दिया। उसके बाद जब सुषमा आई तो मैंने कृत्रिम खीझ से कहा—"सुषमा तुम दौड ही लगाती रहोगी या कुछ खाओगी भी ? बैठो, 'सर्व' करने का काम अब मैं अपने जिम्मे लेता हू।"

सुषमा ने पहले मना किया, फिर बैठ गई। मुझे एक बार से ज्यादा रसोई की ओर नही जाना पडा, क्योकि हम लोग पहले ही काफी खा चुके थे।

भाभी के जाने के वाद मैंने पूछा—"भाभी अच्छी हैं न ?"

"वहुत अच्छी हैं।"

"वहुत अच्छी है, मैं जो कहता था।"

"वडा स्नेह करती है, मुझे तो ऐसा लगा जैसे मेरी ही भाभी है।"

"सो तो हृ ही, तेरी भाभी नही तो और क्या हैं ?"

"हु, तुम समझते भी हो, मेरी भाभी होगी तुम्हारी वहू। फिर मैं भाभी को वुलाया भी करूगी और उनसे पास आया-जाया भी करूगी।"

दार्शनिकों के मुह से सुना है कि हमारे व्यक्तित्व के भीतर कोई आत्मा होती है, जो पल-पल मे आने वाले हजार संवेदनों तथा भावनाओं के बीच स्थिर एव अपरिवर्तित रहती है। मैं जब अपने सीमित इतिहास पर दृष्टि डालता हू तो मुझे इस जीवन के अनेक विवर्तनों और उनमे निर्धारित क्रिया-कलापों के कहीं भी ऐसे अचल, स्थिर सत्ता का आभास नहीं मिलता। सम्भव है दूसरे जनों मे आत्मा नाम की वस्तु रहती हो, किन्तु जान पडता है कि विधाता ने मेरे गतिमय अस्तित्व को उस चीज़ से वचित ही रखा है। न मुझे कभी इसीका अनुभव हुआ कि हमारे भीतर अच्छाई-बुराई का निर्णय करने वाली कोई नित्य वृत्ति या शक्ति होती है। यदि मैं कहू कि विधाता ने आत्मा की भाति सदसद्-बुद्धि अथवा 'कान्शयन्स' से भी मुझे वचित ही रखा तो अत्युक्ति न होगी। मेरी स्मृति मे मेरा यह व्यक्तित्व अखण्ड और एक न रहकर अनेक व्यक्तित्वों की समावेश सम्बद्ध परम्परा जैसा बनता और बदलता रहा है। भिन्न-भिन्न स्थान और भिन्न-भिन्न ससर्ग हमारे आत्म-रूप को किस तरह बनाते और बिगाडते है, इसका जैसा तीखा अनुभव मुझे हुआ है वैसा कम लोगों को हुआ होगा।

माताजी के साथ मैं लौटकर लखनऊ आया। अभी विश्वविद्यालय

खुलने मे देर थी। पिताजी ने कहा—"तुम्हारा जलवायु-परिवर्तन हो चुका, अब ध्यान लगाकर कुछ ठोस काम कर डालो। हो सके तो इन छुट्टियो मे अपनी पाठ्य-पुस्तको का एक बार पूरा पारायण कर लो।"

मैंने कहा—"जी पिताजी, कोशिश करूगा। लेकिन साइस की किताबें बिना शिक्षको की मदद के ठीक-ठीक समझ मे नही आती।"

"फिर भी ..." पिताजी ने प्रोत्साहन देते हुए कहा।

लेकिन पिताजी की बात मेरे मन मे नही उतरी। बिजनौर से लौटने के बाद इन दिनो मैं कुछ अन्यमनस्क-सा रहता। एक अजीब-सी आकुलता मुझे बेचैन किए रहती, और बिजनौर की कतिपय स्मृतिया परेशान करती।

लखनऊ मे कई महीने रह लेने पर भी मैं अभी तक वहा के मुख्य बाजार हज़रतगज से विशेष परिचित न हो सका था। घर से चलकर मैं बीच की दूसरी सडको पर मुडता-बचता विश्वविद्यालय जाता था। पिताजी ने मुझसे एक बार कहा था कि मैं गज मे घूमने की आदत न डालू क्योकि उससे वक्त बहुत खराब होता है। मैंने उनके आदेश-भग का कोई कारण नही पाया। किन्तु अब मेरे मन मे सहसा उक्त बाज़ार मे घूमने और वहा के वातावरण मे परिचित होने की तीव्र वासना जगने लगी। शायद मुझे यह प्रच्छन्न विश्वास था कि वहा पहुचने से मेरी उखडी हुई चित्त-वृत्ति का बहलाव हो सकेगा।

मैं लाइब्रेरी जाने के बहाने से गज जाने लगा। इतनी छोटी बात मन और मस्तिष्क पर कोई गहरा प्रभाव छोड सकती है, यह उस समय मेरी कल्पना मे नही आया था। गज एक विशेष स्थान या बाजार ही नही, आधुनिक सभ्यता का एक प्रबल प्रतीक है—आधुनिक सस्कृति का ट्रेनिंग केन्द्र। वहा पहुचने का अर्थ क्रमश एक प्रकार के सस्कारो को छोडना, दूसरो को ग्रहण करना, और जीवन के नये मूल्यो को आत्मसात् करना है, इस तरह की कोई आशका या अनुमान मुझे उस समय नही हुआ। मैं सिर्फ यही अनुभव कर सका कि यह स्थान ऊबे या परे-

ईशान मन का विनोद करने का एक अव्यर्थ साधन है।

शुरू-शुरू मे वहा अकेले निरुद्देश्य घूमते हुए मुझे कुछ अजीब लगा किन्तु धीरे-धीरे मैं यह सीखने लगा कि किस तरह उस बाजार मे इधर-उधर खडे होकर, और कॉफी हाउस या किसी रेस्तरा मे बैठकर, समय बिताया जा सकता है। चार-पाच दिन बाद मुझे यह भी पता चला कि मेरे क्लास के कुछ साथी वहा नियम से घूमने आते हैं, किन्तु उनके गुट मे सम्मिलित होने की न तो मैंने कोशिश ही की, न वह सम्भव ही लगा। बात यह थी कि मुझे बहुत सीमित जेब-खर्च मिलता था, जिसके बल पर कॉफी हाउस मे मित्रो के साथ बैठना साध्य नही दीख पडा। यो भी कॉफी हाउस मैं कम ही जाता, सोचता कि सिर्फ चार-छह आने की चाय या कॉफी पीकर किसी रेस्तरा की कुरसी तोडते रहना अशोभन बात है।

प्रारम्भिक परिचय के उन दिनो मे शाम के वक्त गज मे घुमते हुए मुझे कुछ वैसा ही लगता जैसा कम प्रकाश से सहसा ज्यादा प्रकाश से भरी जगह मे पहुचने पर जान पडता है। गज का यह प्रकाश भौतिक से अधिक सामाजिक और आत्मिक था, उसकी चकाचौध मुख्यत आखो को नही, बुद्धि और मन को प्रभावित करती थी। प्रतीत होता, मानो वहा के वातावरण मे एक अपूर्व, अनिर्वचनीय दीप्ति, सजीवता और तत्परता भरी हुई है। चारो ओर स्वच्छ, कीमती वेश-भूषा से सज्जित सैकडो स्त्री-पुरुष दिखाई देते, और उस भीड मे लोगो के रूप-रग और सम्पन्नता के दर्जो का विवेक करना कठिन जान पडता। विविधता के भीतर भी वहा एक अजीब तरह की एकरसता का आभास मिलता। जान पडता जैसे वहा आने वाले नर-नारी सब एक ही-सी रुचियो, भावनाओ एव आकाक्षाओ से प्रेरित है। उस एकता का रहस्य क्या था, यह समझने लायक मैं उस समय नही था। फिर भी मुझे महसूस होता कि मैं उस विशाल एकता की परिधि से समाविष्ट नही हू। बाजार की लम्बी-चौडी भीड मे भी मैं स्वय अकेला-सा अनुभव करता।

मेरी यह इच्छा होती कि अपने व्यक्तित्व के इस असामाजिक निरालेपन से अपनी व्यक्तिगत, निजी समस्याओ तथा अभिलाषाओ से, मुक्ति पाकर गज की उस चमकीली, उल्लसित सामूहिकता मे मिश्रित और विलीन हो जाऊ।

शीघ्र ही मैं अनुभव करने लगा कि गज की उल्लिखित एकता उतनी सश्लिष्ट और अखण्ड नही है। आश्चर्य के एक धक्के के साथ जैसे मैंने देखा—गज मे स्त्री-पुरुष नही, स्त्रिया और पुरुष आते हैं। इस धक्के ने मेरे औत्सुक्य को जागरित किया, और मेरी आवेगात्मक प्रकृति मे विघटन उत्पन्न कर दिया। क्रमश मेरी बिजनौर की कोमल स्मृतिया क्षीण पडने लगी। वे भावनाए जो अब तक एक विशिष्ट व्यक्तित्व मे ससक्त थी, मानो धीरे-धीरे गज के समग्र वातावरण, समूची सामूहिकता पर खण्डश केन्द्रित होने लगी। मेरी उत्सुक मिथुन-वासना, जो भाभी के सपर्क मे उन्मिषित हुई थी, अब नारी-मात्र की उपस्थिति मे उत्कलित होने लगी। सक्षेप मे, अब मैं विषम लिंग के सदस्यो मे सचेत अभिरुचि लेता जान पडने लगा। मशीन द्वारा तैयार किए गए एक ही वस्तु के हजारो अदद जिस प्रकार एक-से दिखाई देते है, वैसे ही तरह-तरह के यान्त्रिक उपकरणो तथा वस्त्रो द्वारा अपने को सज्जित करके निकलने वाली गज की बीसियो स्त्रिया कम-बढ समान रूप से आकर्षक और श्लाघ्य प्रतीत होती। और वहा खडे होकर मेरे चौंधिआए हुए नेत्रो और मस्तिष्क के लिए यह निर्णय करना कठिन हो जाता कि उनमे से कौन मेरी उच्छ्वसित भावना और अपरिमित उत्सर्ग-वृत्ति का स्थायी पात्र बन सकती है।

कुछ दिनो बाद विश्वविद्यालय खुला। वहा के जीवन की अनेकविध व्यस्तता मे मेरा गज मे घूमने का अभ्यास धीरे-धीरे कम होने लगा।

फिर भी मैं अब वही 'गजन' नही था जो सुषमा की सगनी मे सम्मिलित होने और गज के जीवन से परिचित होने के पूर्व था। अब

मेरे व्यक्तित्व में नई उत्सुकताओं, रुचियों तथा भावनाओं का समावेश हो गया था। यह परिवर्तन कितना बड़ा था इसका आभास मुझे बाद के जीवन में क्रमशः ही मिलना था। बाहर से देखने में मैं वही था, किन्तु मेरी वह दृष्टि जो जीवन के विभिन्न पहलुओं का मूल्य आंकती तथा उसकी दिशा का निर्धारण करती है, बदल गई थी।

स्कूल के दिनों में मैं यह सुनता और मानता आया था कि हमारा जीवन सादगी और ऊंचे आदर्शों का जीवन होना है। ऊंचे आदर्शों से उस समय मैं समझता था, मेहनत से विद्या-प्राप्ति या ज्ञानार्जन करना। यह ठीक है कि मुझे शुरू से ही साफ और सुन्दर दीखने का चाव था, लेकिन इन जरूरतों और सादगी में मुझे कोई विरोध नहीं दीखता। इसके विपरीत मैं सादगी और सुरुचि को समानार्थक समझता। मुझे याद है, मेरे एक गरीब सम्बन्धी कहा करते—"मुख्य बात यह है कि कपड़े साफ होने चाहिए।" मैं उनकी इस राय से सहमति प्रकट करता। उस समय मुझे यह अहसास नहीं था जिसे हम सुरुचि कहते हैं वह बहुत हद तक एक सापेक्ष चीज है।

गज के वातावरण से मेरे उपचेतन ने सुरुचि, शालीनता और व्यक्तिगत सौन्दर्य-सज्जा के कुछ नये पैमाने ग्रहण कर लिए। मैंने पाया कि मैं अब क्लास के साथियों और अपने को भी, एक भिन्न, तीक्ष्ण दृष्टि से देखने और जांचने लगा हूं।

मेरे क्लास के अधिकांश छात्र मध्यवित्त वर्ग के थे। किन्तु यह वर्ग कहने को ही एक है, इसके भीतर पचास या साठ रुपये पाने वाले क्लर्क से लेकर विश्वविद्यालय के अधिकांश अध्यापकों, मामूली तथा अच्छे वकीलों एवं डाक्टरों तक, आय-क्रम के अनुरूप, श्रेणियों और उप-श्रेणियों का अन्त नहीं है। नतीजा यह कि कक्षा में तरह-तरह के रूप और स्टैण्डर्ड दिखाई देते। कुछ छात्र गांवों के भी थे, और कुछ विशिष्ट अमीर घरानों के। स्वयं मैं विशेष समृद्ध घर का नहीं था और अब यह स्पष्ट समझने लगा था कि अपने साथियों के बीच, उस दृष्टि से, मेरी

स्थिति कहा है।

इस बार मैंने एक दूसरी चीज लक्षित की, विशेषत लडकियो के सम्बन्ध मे। मैंने पाया कि उनके बाह्य, शारीरिक आकर्षण तथा वस्त्र-भूषा मे आनुपातिक सम्बन्ध है। हमारे क्लास मे पाच लडकिया पढती थी। वे प्राय शिक्षक के आने पर ही क्लास मे घुसती। यदि कभी किसी शिक्षक को आने मे देर हो जाए, और वे पहले आ पहुचें, तो सब बाहर बरामदे मे खडी प्रतीक्षा करती रहती। इस दृष्टि से उन पाचो मे बडी एकता या समानता थी, किन्तु बाकी सारी बातो मे वे एक-दूसरे से काफी भिन्न थी। तीन लडकिया बहुत साधारण घरो की जान पडती थी, वे रूप-रग से भी साधारण थी। वे नितात सादे, सूती कपडे पहने रहती। मुझे अच्छी तरह याद है, दिसम्बर की ठण्ड मे भी वे छात्राए अक्सर सूती साडिया और ब्लाउज पहने आती। बाद मे शायद उन्होने ऊनी स्वेटर उपलब्ध कर लिए थे, किन्तु माघ के घोर शीत मे भी उन्हे कभी ऊनी शाल या चेस्टर का उपयोग करते नही देखा गया।

शेष दो लडकिया समृद्ध घरो की जान पडती थी। कान्ता हिन्दू थी, अख्तर फातिमा मुसलमान। कान्ता साडी पहनती थी, मुख्यत वायल, जार्जेट आदि की साडिया। अख्तर कुरता-सलवार और दुपट्टे का उपयोग करती थी।

वर्गगत हैसियत की दृष्टि से, जैसा कि मैं अब समझने लगा था, क्लास के साथियो के बीच मेरी स्थिति लगभग मध्य मे थी। मैं अच्छे कपडे ही पहनता था, फिर भी मैं जानता था कि इस मामले मे कुछ छात्र मुझसे कही अधिक बढे-चढे हैं, और यह कि मैं उनकी बराबरी नही कर सकता। ऐसी स्थिति मे अपने को सतोष देने के लिए मैं कहता—"इतनी तडक-भडक अच्छी नही, विश्वविद्यालय मे हम शिक्षा प्राप्त करने आते हैं, न कि धन और ऐश्वर्य का दिखावा करने। किन्तु, नगर की आब-हवा से परिचित हो लेने के बाद, अब मुझे अपना उक्त तर्क-विरोध सतोषप्रद नही जान पडा। जब मैं देखता कि अपनी पोशाक के

कारण कुछ छात्र, जो पढने-लिखने मे खास अच्छे नही है, अधिक चुस्त और सुरूप जान पडते है, तो मुझे उनसे ईर्ष्या होती। यह सच था कि मैं अपने अन्तर्मन से सुरुचि, नफासत और भव्यता के वे पैमाने ग्रहण कर चुका था जो मध्याकालीन गज के नर-नारियो की भ्रमणचर्या मे प्रतिफलित होते थे।

क्लास की पाच लडकियो मे से दो ही छात्रो के अवधान की विशिष्ट पात्र थी। यहा तक कि अध्यापकगण भी, मौका होने पर उन्ही दो को सम्बोधित करना पसन्द करते। बाकी तीन लडकिया बहुत कुछ उपेक्षित रहती। अध्यापको मे सिर्फ डॉ० भल्ला ही ऐसे थे जो कभी-कभी इन लडकियो से भी बात कर लेते थे। उन गरीब छात्राओ की स्थिति पर मुझे कभी-कभी तरस आता। किन्तु धीरे-धीरे मैं यह देखने और सोचने का अभ्यस्त हो चला कि समाज मे सुन्दर और समृद्ध लोगो को विशेष आदर का बर्ताव मिलता है, और उनकी तुलना मे दूसरो की उपेक्षा होती है।

मेरे दृष्टिकोण मे इस प्रकार का बडा परिवर्तन होने के मूल मे सिर्फ गज के वातावरण का परिचय और प्रभाव ही नही था, कुछ दूसरे कारण भी उपस्थित हो गए, और होते चले गए।

हमारे साइन्स के विभाग मे विद्यार्थियो की एक परिषद थी। जुलाई के अन्तिम सप्ताह मे उसके पदाधिकारियो का चुनाव हुआ था। उसमे अख्तर फातिमा उपसभापति चुनी गई थी। अब तक उस परिषद् की सिर्फ एक बैठक सितम्बर के महीने मे हुई थी। नवम्बर के पहले सप्ताह मे उक्त विज्ञान-परिषद् की दूसरी बैठक हुई, जिसमे चुने हुए छात्र-प्रेसिडेण्ट के अनुपस्थित होने के कारण, सभापति की कुर्सी का स्थान अख्तर फातिमा ने सुशोभित किया। उस दिन अख्तर बडे स्वच्छ, सुन्दर लिबास मे विश्वविद्यालय आई थी। यो तो वह सदैव ही बडी 'स्मार्ट' दीखती थी, पर उस दिन उसकी छवि खास तौर से दर्शनीय थी। सभा के कार्यक्रम मे उसका विशेष भाग नही था। बाहर से एक प्रोफेसर आए

थे जिनका भाषण होना था। अख्तर ने शुरू मे उनका संक्षिप्त परिचय दिया, फिर उनसे व्याख्यान देने की प्रार्थना की। व्याख्यान हो चुकने पर उसने उपस्थित जनो को सूचित किया कि अब वे वक्ता से इच्छानुसार प्रश्न कर सकते हैं। और अन्त मे सभा समाप्त करते हुए, अख्तर ने बडे मधुर किन्तु रूढ ढग से वक्ता और उपस्थित लोगो को धन्यवाद दिया।

मीटिंग के बाद कुछ सहपाठियो ने सभा के सुन्दर संचालन के लिए अख्तर को बधाई दी। अख्तर मुस्कराती हुई उन बधाइयो को स्वीकार कर रही थी, और बधाई देने वालो को मधुर भाव से धन्यवाद दे रही थी। उस समय मेरी बहुत इच्छा हुई कि मैं अख्तर के करीब पहुचकर आत्मीयता के भाव से उसे बधाई दे दू, पर मैं वैसा करने का साहस न बटोर सका। बाद मे मैंने महसूस किया कि मेरी इस साहस की कमी का एक सबब यह भी था कि मैं उस दिन बढिया तो क्या, मामूली अच्छे कपडे भी नही पहन रहा था। सच यह कि मुझे पहले से सूचना ही नही थी कि उस दिन 'विज्ञान-परिषद्' की बैठक होने वाली है। इसके विपरीत वे साथी, जिन्होने अख्तर को बडे तपाक से बधाई दी थी, उस दिन खास तौर से अच्छी पोशाक पहने हुए थे। यो भी वे अमीर घरो के थे, और हमेशा आकर्षक कपडे और जूते पहनकर क्लास मे आया करते थे। जिन दो साथियो को मैंने खास तौर से लक्ष्य किया था, और जो विशेष ध्यान आकृष्ट कर रहे थे उनके नाम थे सुधीर गुप्ता और शौकत हुसैन। वे दोनो अख्तर के साथ यो भी अक्सर घूमते दिखाई देते थे।

उस दिन से मुझे अख्तर के व्यक्तित्व मे विशेष दिलचस्पी होने लगी। मुझे याद है कि अगले दिन मैं विश्वविद्यालय मे अपना सर्वश्रेष्ठ सूट पहनकर पहुचा, और मैंने प्रयत्नपूर्वक अख्तर के निकट पहुचकर उसे पिछले दिन की सफलता के लिए बधाई दी। अख्तर ने अपने स्वाभाविक मृदु हास्य और मधुर स्वर से मुझे धन्यवाद दिया, जिससे मैं अपने अन्तर तक पुलकित और प्रसन्न हो गया।

मैं अख्तर से घनिष्ठ होने की कामना और चिन्ता करने लगा।

एक दिन डॉक्टर भल्ला के क्लास मे अन्तर्जातीय विवाह के प्रश्न पर बहस छिड गई। मैं डॉक्टर भल्ला की मनोवृत्ति को समझता था, और जानता था कि वे किस तरह की मान्यताओं और सम्मतियो को पसन्द करते है। उन्हे प्रसन्न करने की इच्छा से मैंने खडे होकर कहा—"मैं समझता हू कि हमारे देश का कल्याण तब तक नही हो सकता जब तक यहा की विभिन्न जातियो के ही नही, विभिन्न धर्मों के लोगो के बीच भी परस्पर विवाह न होने लगे। ऐसा किए बिना हमारा राष्ट्र कभी भी असली अर्थ मे एक और सशक्त नही हो सकेगा।"

डाक्टर भल्ला ने मेरे विचारो का समर्थन और प्रशसा की। बोले—"हमारे नवयुवको मे ऐसी ही 'स्पिरिट' होनी चाहिए। इस 'स्पिरिट' को पैदा किए बिना हम न स्वतन्त्र हो सकते है, न किसी तरह की तरक्की ही कर सकते है। और साइंस की दृष्टि से तो यह जात-पात का प्रश्न बड़ा ही लचर प्रश्न है, इसकी कोई अहमियत ही नही है। धार्मिक भेदो का सवाल भी वैसा ही है—वास्तव मे यदि धर्म मे वैज्ञानिक सचाई है तो वह सबके लिए एक-सा होना चाहिए, और अगर वैसी सचाई नहीं है, तो वह फिजूल चीज है। इधर साइंस की फैकल्टी मे, उसके लिए कोई जगह नहीं है। मिस्टर राजन! मुझे पूरा विश्वास है कि तुम न सिर्फ अपनी खास जाति मे शादी नही करोगे, बल्कि एक मुस्लिम या ईसाई लड़की से शादी करोगे।"

साथियो ने तालिया पीट दी। डाक्टर भल्ला ने कहा—"अपने क्लास के सभी विद्यार्थियो से, लड़को से और लड़कियो से, मैं ऐसी ही उम्मीद करता हू। वरना तुम लोगो के साइंस पढ़ने से, और मुझसे पढ़ने से फायदा ही क्या हुआ।"

अख्तर तथा दूसरी लड़कियो ने अन्य साथियो के साथ तालिया नहीं बजाई थीं। किन्तु वे सब मुस्करा रही थीं—और अख्तर ने ही मधुर

भाव से मुस्करा रही थी। उसकी मुस्कराहट मानो मेरे अरमानो की राह मे आशा की किरने बिखेर रही थी।

अख्तर विशेष सुन्दर हो, ऐसा नही था। मुख की रचना और रग की दृष्टि से भी, शायद, कान्ता उससे बीस ही थी। फिर भी, कुल मिलाकर, अख्तर ज्यादा 'स्मार्ट' और तत्पर, इसलिए आकर्षक होने की भावना उत्पन्न करती। उसके बाल यूरोपीय युवतियो जैसे कटे हुए कन्धो से कुछ ही नीचे पहुचते और बडे ही भले लगते। कान्ता की तुलना मे वह कुछ अधिक लम्बी, कुछ-कुछ दुबली और ज्यादा बौद्धिक जान पडती। कान्ता का मुख अधिक उत्फुल्ल और कान्तिमान लगता, उनपर हलके गुलाबी रग की आभा चमकती, इसके विपरीत अख्तर का चेहरा फीका, सफेद और निस्तेज दिखाई पडता। किन्तु पीछे से और दाई-बाई दिशाओ से कुछ दूरी पर खडी या चलती हुई अख्तर ज्यादा आकर्षक दीखती। उसका अग्रेज़ी का उच्चारण विशेष स्पष्ट और मधुर था, और उसे 'एक्सेण्ट' का सही ज्ञान था। मुस्कराहट और हलकी हसी से सहचरित उसकी बातचीत उसके आकर्षण मे विशेष वृद्धि कर देती।

दिसम्बर के पहले सप्ताह मे एक दिन अख्तर ग्रे शेड का एक नया कोट पहनकर आई। वह कोट उसपर बहुत भला लग रहा था, और वह अलक्षित रूप मे सुन्दर दीख रही थी। उस दिन वह कान्ता से किसी भी दृष्टि से कम नही जान पड रही थी—उसके चेहरे की निराली, भूरी, कोमल ऊन-जैसी आभा कान्ता के गुलाबी मुख से सहज ही होड ले रही थी। वस्त्रो का व्यक्तित्व पर कितना प्रभाव पडता है, कहा तक वे उसकी श्री और शोभा का अविभाज्य अग बन सकते हैं—इसका जैसा स्पष्ट अनुभव मुझे उस दिन हुआ वैसा पहले कभी नही हुआ था। मैं बार-बार अख्तर को देखते हुए नही अघा रहा था। उस दिन मुझे यह भी चेतना हुई कि कपडे पहनने और रहन-सहन की आदते व्यक्तित्व का बाहरी आवरण या उपकरण-मात्र न होकर उसका अवियोज्य,

अन्तरग हिस्सा बन जाती है। यदि अन्तर इतनी कुशलता से सज्जित होकर सोसाइटी में निकल सकती थी, तो यह प्रश्न विशेष महत्त्व का नहीं था कि स्वयं प्रकृति ने उसे कितने बढ़िया साँचे में ढाला था। दूसरे गुणों की भाँति मनुष्य का सौन्दर्य भी बहुत हद तक सामाजिक है—उसकी सत्ता और उपयोगिता दोनों समाज से सम्बन्धित है। सम्पत्ति की भाँति सुन्दरता का भी मुख्य ध्येय सामाजिक महत्त्व और गौरव की प्राप्ति है, और चूँकि अन्तर प्रसाधन द्वारा इन उद्देश्यों की पूर्ति में सफल हो सकती थी, इसलिए यह कहने का कोई अर्थ नहीं था कि वह कान्ता या किसी दूसरी लड़की से नैसर्गिक सौन्दर्य में रत्ती-मात्र भी कम थी।

साथ ही मैंने सोचा—इस प्रकार अपने व्यक्तित्व को सजाकर समाज की नज़रों में आकर्षक बनाना हरेक चतुर व्यक्ति का अपने प्रति आवश्यक कर्तव्य है। देश के यदि सारे मनुष्य इसी तरह सुन्दर और चुस्त ढंग से रहना सीख जाएं, तो राष्ट्रीय जीवन के सौष्ठव और लालित्य का धरातल अवश्य ही ऊँचा उठ जाए।

उसके दूसरे या तीसरे ही दिन ही मैंने लक्षित किया कि क्लास के कई अमीर विद्यार्थी, जिनमें सुधीर और शौकत प्रमुख थे, नये तथा सुन्दर सूट पहने हुए हैं।

मीटिंग के दिन की भाँति उस दिन भी, जब अन्तर नया कोट पहनकर आई थी, सुधीर और शौकत ने उसकी प्रकट रूप में प्रशंसा की थी। कोट को लक्ष्य करके शौकत बोल उठा—"हाउ ग्रैण्ड!" (कितना शानदार!) और सुधीर ने कहा था—"हाउ चार्मिंग, मिस अन्तर, यू लुक सुपर्ब!" (कितना मनोज्ञ, मिस अन्तर, आप एकदम भव्य दीखती हैं!)

मैंने उनके ये उद्गार सुने थे, उनके उत्तर में अन्तर का मीठे भाव से मुस्कराना भी देखा था। पर मैं स्वयं अन्तर के पास पहुँचकर न जा सका था उसके कोट की प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं कह सका। कारण पहले जैसा ही था—सुधीर और शौकत की तुलना में, और अन्तर की तुलना

मे भी, मैं बहुत ही मामूली कपडे पहने हुए था।

घर पहुचकर मैंने पिताजी से कहा—"पिताजी, मुझे एक नया सूट सिलवा दीजिए।"

"सूट ? किसलिए ? दो सूट तो तुम्हारे पास है—एक तो पिछले साल ही मिला था।"

"है, लेकिन अच्छे तो नही है। विश्वविद्यालय मे कोई भी इज्जतदार छात्र ऐसा सूट नही पहनता।"

पिताजी ने आनाकानी की, पर मेरी जिद देखकर अन्त मे राजी हो गए। हजरतगज की एक दुकान मे एक कीमती सर्ज पसन्द करते हुए मैंने पिताजी को समझाया—"सिलाई तो वही जाएगी, इसलिए सस्ता कपडा खरीदने से कोई फायदा नही।"

काफी पसोपेश के बाद पिताजी ने वह सर्ज खरीद दी। मैंने मन मे बहुत कृतज्ञ अनुभव किया। पिताजी सचमुच ही मुझे बहुत प्यार करते है।

सूट मिला और मैं पहनकर विश्वविद्यालय गया। मैं बहुत प्रसन्न था, मैं कुछ साथियो से बधाई या प्रशसा की आशा कर रहा था। शायद एक-दो साथियो ने प्रशसा की भी थी। पर इन साथियो मे कोई उस वर्ग का न था जिसमे सुधीर और शौकत का स्थान था।

वह सूट पहनने के एक-दो दिन बाद ही मुझे जैसे एक धक्के के साथ यह प्रतीति हुई कि मेरे जूते पुराने और घटिया हैं। जुलाई मे खरीदे थे, छ महीने गुजर गए। माना कि अभी टूटे नही है, मजबूत है, फिर भी पुराने तो दीखते है, और क्वालिटी भी अच्छी नही है। बारह रुपये मे भला वही बढिया जूते मिल सकते है।

मैंने पिताजी से कहा—"मेरे पास एक ही जोडी जूते है, हर मौके पर हर रोज उन्हीको पहनना पडता है। यहा तक कि डिपार्टमेट के फक्शन (उत्सव-समारोहो) मे भी। यह बहुत बुरा लगता है—लडको के पास चार-चार जोडे जूतो के है।"

पिताजी ने फिर टालने की कोशिश की, पर मेरे अड़े रहने पर उन्होंने मुझे बाटा की दुकान से अच्छे जूते खरीद दिये।

मैं प्रसन्न हुआ, फिर एक बार पिताजी के प्रति कृतज्ञता महसूस की। किन्तु मेरी प्रसन्नता स्थायी नहीं हो सकी। कुछ दिन बाद मैंने देखा कि सुधीर और शौकत भिन्न रंगों के दूसरे नये सूट पहने चले आ रहे हैं। मैं जैसे अवाक् रह गया। मेरे पास सिर्फ एक ही अच्छा सूट था, रोज-रोज उसीको पहनकर मैं जाता था, और अब, मुझे लगने लगा कि इस प्रकार नित्य एक ही सूट पहनकर आना बड़ी भद्दी बात है। लेकिन कोई उपाय न था।

मैं अब पुराने सूट पहनते हुए सकुचाता—बढ़िया सूट पहन लेने के बाद घटिया कोट या सूट कैसे पहने जाएं! इससे तो यही अच्छा था कि मेरे पास एक भी अच्छा सूट न होता। और मैं सोचता—पिताजी को क्या बिलकुल ही 'सैन्स' नहीं था जब उन्होंने मेरे लिए उस तरह के कोट और पतलूनें बनवाई थीं!

आगे इस तरह के और भी आघात मुझे सहने पड़े, उनका विवरण देकर मैं आपका समय नष्ट नहीं करूंगा। गैरियत यह थी कि स्वयं अख्तर इतने अधिक और विभिन्न कपड़े पहनती दिखाई नहीं दी। अपने रहन-सहन के एक खास धरातल पर, एक विशेष सीमा तक, वह मानो अभी भी सादगी के आदर्श का निर्वाह करती चल रही थी।

मेरे लखनऊ आने के वाद सुषमा मुझे वरावर पत्र लिखती रही थी। विजनौर और लखनऊ के वीच वह एक कडी का काम करती। चाचाजी का स्वास्थ्य, चाचीजी की कुशल-क्षेम और छोटे भाई की वातें और अव भाभी से परिचय हो जाने पर उनका तथा उनके घरवालो का समाचार। मैंने देखा कि सगाई के वाद से सुषमा कुछ ज्यादा समझदार हो गई है, वह अव हसी-मजाक भी ज्यादा करती है।

म ानी के वाद के सवसे पहले पत्र मे सुषमा ने लिखा था किस प्रकार उसकी भाभी से घनिष्ठता वढती जा रही है, और वे उसे क्यो और कितनी प्रिय लगती हैं। यह भी लिखा था कि वे मुझे वहुत याद करती है, भेंट होने पर हमेशा मेरे वारे मे पूछती है, और यह कि विजनौर मे उनका विलकुल ही जी नही लगता। "भाभी कहती हैं कि यदि देवर झूठे को वुलाए तो भी वे सचमुच लखनऊ चली आए।" पत्र पढकर मन मे एक मीठी-सी खटक हुई थी, और मैं मन ही मन मुस्करा दिया था। और मैंने सोचा था, सचमुच ही विजनौर भाभी के रहने लायक जगह नही है, विजनौर भी कोई शहर है!

अगले पत्र मे उसने लिखा था कि किशन भइया का मिजाज अव वहुत विगड गया है, छोटी-छोटी वातो पर भाभी से और मौसीजी से

मुझमे एक चीज़ की सदा से कमी रही है—उस तत्त्व की जिसे लोग 'टैक्ट' कहते हैं। इस दृष्टि से पहले के और अब के मुझमे खास अन्तर यही है कि पहले मैं 'टैक्ट' की महत्ता और अपने मे उसकी अनुपस्थिति दोनो मे अनभिज्ञ था, जब कि आज मैं उन्हे जानता हूं। जानता हूं, शायद इस-लिए अब कुछ सावधानी से बरत लेता हूं।

बी० एस-सी० के सम्पूर्ण प्रथम वर्ष मे जो मैं अख्तर के विशेष निकट न पहुंच सका इसका बहुत-कुछ कारण मेरी अदक्षता या टैक्टहीनता थी। मैं उसके निकट पहुंचने का, उससे बातचीत करने का, कोई बहाना न खोज पाता। दूर ही दूर से अपनी प्रशंसा और लालच भरी दृष्टियो के फूल चढाता रहता। उसकी कतिपय क्रियाओ, सफलताओ और चीज़ो को लुभाए नेत्रो से देखते हुए भी मैं अक्सर यह न सोच पाता कि मुझे उनके सम्बन्ध मे अपनी सराहनामूलक प्रतिक्रिया को प्रकट भी करना चाहिए। मैं उन भावनाओ का मूक आस्वादन ही उचित समझता। इस समझ मे विपर्यय तभी होता जब मैं किसी दूसरे छात्र को अख्तर के पास पहुंचकर उक्त चीज़ो की स्तुति करते सुनता।

इस मामले मे सुधीर और शौकत मुझसे ठीक उलट थे। अख्तर की प्रशंसा का कोई भी अवसर वे हाथ से नही जाने देते। और कभी-कभी

तो उसकी तारीफ करने के वे ऐसे वहाने ढूढ लेते जिनकी मैं कल्पना भी न कर पाता। इस तरह वे अक्सर अख्तर के पास पहुचते और अपनी प्रच्छन्न चाटुकारिता मे उसके मुख पर मधुर मुस्कराहटें उकसाकर उसकी प्रसन्नता का रस लेते। वातचीत मे वे अख्तर का ऐसी निपुणता से समर्थन करते कि उसे यह चेतना भी न हो कि उसकी खुशामद की जा रही है।

उस परिस्थिति पर आज मैं विचार करता हू तो मुझे कभी-कभी वडा आश्चर्य होता है। रूपवती लडकिया कितनी आसानी से यह मान लेती हैं कि उनमे दूसरे सारे गुण भी हैं। अपनी वौद्धिकता और दूसरी क्षमताओ के सम्वन्ध मे वे कितनी जल्दी भुलावे मे आ जाती हैं! और यह भी अचरज की वात है कि दुनिया मे कितने लोग महत्त्वशाली व्यक्तियो का रुख देखने की कला द्वारा ही अपने जीवन को निवाह ले जाते हैं!

सौन्दर्य एक प्रकार का ऐश्वर्य है, ऐश्वर्य सदा से समर्थन और प्रशसा का कर लेता आया है। एक तरह से सौन्दर्य की शक्ति हुकूमत और सम्पत्ति की शक्तियो से भी वडी है, क्योकि उसका जनतन्त्रीकरण सभव नही है।

विश्वविद्यालय मे मेरा दूसरा वर्ष कुछ ज्यादा आशाए लेकर प्रारम्भ हुआ। मेरे सौभाग्य से अख्तर के और मेरे 'फिजिक्स' के प्रयोगो के लिए एक ही दिन स्थिर किया गया। हमारी सीटें भी करीव थी।

मैं गणित मे तेज़ था। प्रयोग के वाद "कैल्क्यूलेशन्स' करने मे अख्तर अक्सर गडवडा जाती। ऐसी ही स्थिति मे पहली वार उसने कुछ सकोच के साथ मुझसे मदद मागी थी, वाद मे वह मुझसे नियम से सहायता लेने लगी। कभी-कभी 'इस्ट्रूमेण्ट्स' को ठीक से व्यवस्थित करने मे भी वह मुझसे मदद ले लेती थी।

सहायता पाने के वाद वह मुझे अपने स्वाभाविक मीठे ढग से धन्यवाद देती।

इस सम्पर्क मे मैंने अक्षर के स्वभाव और चरित्र की अनेक विशेषताए लक्षित की। अक्षर के चेहरे या व्यवहार मे कभी गहरे, अनियन्त्रित आवेग का पुट नही देखा गया। वह हमेशा सचेत और सयत दिखाई देती। उसका प्रत्येक इगित, प्रत्येक गति-चेष्टा मर्यादित और सधा हुआ रहता। उसकी बातचीत या चाल-ढाल मे कभी अनावश्यक भावुकता, झिझक या आकुलता नही देखी गई। वह हमेशा अपने और परिस्थितियो के ऊपर ठण्डा, बौद्धिक, नियन्त्रण रखती जान पड़ती। मुझसे सहायता लेते हुए यदि कभी वह शिक्षक द्वारा देख ली जाती, तो थोड़ी भी अप्रतिभ या परेशान न होती, और शिक्षक का ऐसा शिष्ट-मधुर समाधान करती कि उन्हे कुछ कहते नही बनता। उक्त दृष्टियो से मेरी प्रकृति और आदतें अक्षर से काफी भिन्न थी। इसीसे आज मैं समझता हू कि अक्षर को पा लेने पर भी मैं उसके साथ सुखी रह सकता, इसमे सन्देह है।

मैं स्पष्ट कहू, मुझे इतना हिसाब करके चलने वाले, इतने सयत शीतल स्वभाव के आदमी पसन्द नही है। मुझे वे अरोचक जान पड़ते है। इस प्रकार के लोगो को देखकर मुझे लगता है जैसे उनमे जीवनी-शक्ति की, उस रजोगुणी स्पिरिट की जो मनुष्य को दाव लेने, जोखिम स्वीकार करने, और 'एडवेञ्चर' के मार्ग पर चलने को उकसाती है, कमी या अभाव है। मुझे उन व्यक्तियो की उपस्थिति मे, जिनमे भावना और आवेग पर व्यवसायी मस्तिष्क का पहरा रहता है, एक अजीब-सी बेचैनी महसूस होती है—कुछ वैसा ही अनुभव जैसा कि एक तग रास्ते मे गुजरते हुए या कम हवा के छोटे कमरे मे बैठे हुए होता है। इसके विपरीत मै उन लोगो को पसन्द करता हू जो अनावश्यक रिजर्व नही बरतते, जो दूसरो के सामने सधे-सीखे हुए ढग से, यन्त्र-नरो की भाति व्यापृत न होकर प्रतिक्षण भिन्न, सृजनशील मनुष्यो जैसा व्यवहार करते है। और मुझे वे लोग पसन्द है जो जीवन की खुली हुई हाट मे उसके सघर्षो तथा प्रश्नो के प्रति, उसके सुख-दु ख, प्रेम और घृणा की सम्भावनाओ के प्रति,

तीखी और गहरी प्रतिक्रिया करते हैं।

साथ ही आज मैं स्वीकार करता हू कि अख्तर की उक्त विशेषताए महत्त्वहीन या नगण्य नही थी। शायद अपनी इन विशेषताओ के कारण ही वह मुझे आकृष्ट करती थी। उसका साफ-सुथरा उच्चारण और निर्दोष वेश-भूषा, उसका निराकुल, सयत स्वभाव और व्यवहार, उसका अविचल आत्मविश्वास और सन्तुलन, ये गुण मुझे उसकी ओर खीचते। मुझे जैसे यह प्रच्छन्न आभास था कि उक्त गुण सामाजिक सफलता के लिए नितान्त अपेक्षित हैं। फिर भी मुझे प्रतीत होता कि इतना-मात्र पर्याप्त नही है, और अख्तर का इतना परिचय भी यथेष्ट नही है। मैं उसे कुछ ज्यादा भीतर से, अधिक अन्तरग धरातल पर जानना और पाना चाहता। दीखने वाले व्यक्तित्व से भिन्न उसके आन्तरिक आत्मसत्त्व के सम्बन्ध मे मैं तरह तरह की कल्पनाए करता, और उन कल्पनाओ को निकट सम्पर्क मे सही प्रमाणित होते देखना चाहता।

किन्तु अख्तर की यह अन्तरग, अन्तर्गत आत्मा मुझे कभी देखने को न मिल सकी। अब सोचता हू —शायद उसके वैसी आत्मा थी ही नही। किन्तु उस आत्मा की—गहरे भीतरी सम्पर्क की— खोज मे तब मैंने जो भयकर भूले की थी उनकी याद आज भी बिच्छू के दश जैसी वेदना उत्पन्न करती है।

विद्यार्थियो के 'यूनियन' भवन मे एक रेस्तरा भी था। वहा अक्सर छात्र-छात्राए चाय पीने जाते। कुछ अमीर छात्र कतिपय साहसी या प्रगतिशील मित्र छात्राओ के साथ भी चाय पीते। 'यूनियन' भवन की ओर मैं कम ही जाता, फिर भी मैं जान गया था कि अख्तर वहा पहुचा करती है। उसके निकट सम्पर्क के लोभ मे मैं उधर कुछ ज्यादा चक्कर काटने लगा। एक दिन रेस्तरा के मार्ग मे मेरी अख्तर से भेंट हो गई। मैंने सकोच नमस्ते किया, उत्तर मे उसने मुस्करा दिया। "चाय पीने चल रही है?" मैंने कुछ साहस कर कहा। उत्तर मे उसने फिर मुस्करा-कर सहज भाव से कहा—"चलिये।"

सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जैसे अख्तर ने कोई बड़ा अनुग्रह किया हो। मैंने कल्पना नही की थी कि उसे चाय के लिए आमन्त्रित कर लेना इतना सरल होगा।

रेस्तरां मे भीड थी, फिर भी हम लोगो को सीटें मिल गई। एक मेज़ को घेरे हुए तीन कुरसियां पडी थी, जिनमे से दो पर हम बैठ गए। मैंने बैरा को दो चाय लाने का आदेश देते हुए अख्तर से पूछा—"चाय के साथ क्या लेगी ?" अख्तर ने कहा—"सैण्डविचेज।" "सिर्फ सैण्ड-विचेज़ ? कुछ और भी लीजिए।" "अच्छा, आमलेट भी ले आना," उसने बैरा से कहा। अख्तर की इस बेतकल्लुफी से मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ।

जैसा कि मैंने कहा रेस्तरां मे काफी भीड थी। चार बजे का समय था। इस वक्त काफी छात्र चाय पीने पहुचते थे। हमे इन्तज़ार करना पडा।

पाच-सात मिनट बीत गए। अभी तक बैरा हमारा सामान लेकर नही आया था, अभी वह हमसे पहले आए हुए छात्रों को 'सर्व' कर रहा था। अख्तर के मुख पर मुस्कराहट थी, पर मैं कुछ बेचैनी महसूस कर रहा था। सहसा दरवाज़े की ओर से सुधीर आता दिखाई दिया। दूसरे ही क्षण "हल्लो, मिस अख्तर" कहता हुआ वह हमारे बगल मे बैठ गया।

अख्तर ने मुस्कराकर उसका स्वागत किया। अब वह मुझसे सुधीर से ही बाते करने लगी। इस सम्बन्ध मे अख्तर का कोई दोष न था, क्योंकि सुधीर के आने के पूर्व मैं उससे विशेष बातचीत नहीं कर पा रहा था, यद्यपि चाय साथ पीने के पीछे मेरा उद्देश्य यही था। अन्तरंग वार्तालाप की मुझे अभिलाषा थी, पर मैं यह बिल्कुल नहीं समझ पा रहा था कि किस प्रसंग को लेकर वैसी बातचीत छेडी जा सकती है। ऐसी स्थिति मे मैं यह आशा कर रहा था कि चाय पीते वक्त या उसके बाद वैसा कोई मौका स्वत ही उपस्थित हो जाएगा। किन्तु सुधीर के आगमन ने मेरे इस स्वप्न को अकस्मात् भंग कर दिया।

आने के कुछ ही क्षण बाद, अख्तर से बातचीत करते-करते ही, सुधीर ने एक बार आज्ञा के स्वर मे बैरा को पुकारा था। उसके आते ही उसने चाय और सैण्डविचेज का ऑर्डर दिया और पलक-भर मे अख्तर से पूछकर तीन आमलेट के लिए भी कह दिया। बैरा सम्भवत सुधीर से सुपरिचित था, क्योकि शीघ्र ही उसने सारा सामान उपस्थित कर दिया।

सुधीर सिर्फ अख्तर से ही बातें कर रहा था, अख्तर भी मुख्यत उसीकी ओर मुखातिब थी, यद्यपि कभी-कभी वह मेरी दिशा मे भी देख लेती थी। मैंने पाया कि मैं यकायक मेजबान से बदलकर एक अवांछित मेहमान की भूमिका मे पहुच गया हू।

अन्त मे मुझे जिस बात का भय था वही हुआ, रेस्तरा के बिल का पेमेण्ट सुधीर ने किया। मैंने बैरा से बिल मागा था, उसने उसे मेरे हाथ मे दे भी दिया था। पर बाद मे सुधीर ने इतनी बार और इतने निश्चयात्मक किन्तु शिष्ट स्वर मे अनुरोध किया कि मुझे, दो-तीन बार दुर्बल प्रतिवाद करने के बाद, बिल उसके हाथ मे दे देना पडा। और तब मैंने महसूस किया कि लखनऊ मे इतने दिन रह लेने पर भी मैं अभी सामाजिक साहस और प्रगल्भता मे कितना पिछडा हुआ था।

बाद मे हम लोग उठे तो स्वभावत अख्तर और सुधीर एकसाथ हो गए, और मैं अलग होकर भिन्न दिशा मे चल दिया।

उस दिन की उस घटना से मुझे बहुत क्षोभ हुआ। कितनी मुश्किल से अख्तर को चाय पिलाने का एक अवसर मिला था, उसका भी मैं ठीक उपयोग न कर सका। और मैं सोचने लगा किस अधिकार से सुधीर ने चाय के बिल का पेमेण्ट कर दिया ? क्यो नही मैं अपने अधिकार के लिए अधिक दृढता और तत्परता से व्यवहार कर सका ?

मनुष्य कभी-कभी ऐसे असुविधाजनक प्रश्न उठा लेता है जिनका सही उत्तर उसे रुचिकर और सह्य नही होता। न जाने मनुष्य को क्या रोग है, वह बुरी से बुरी परिस्थिति की, अप्रिय से अप्रिय प्रसग की,

सम्पूर्ण चेतना प्राप्त कर लेना चाहता है। यह आभास रखते हुए भी कि एक स्थिति का विश्लेषण हमारे स्वाभिमान के लिए घातक होगा, हम उस विश्लेषण से विरत नहीं हो पाते। हम अपने अपमान और क्षोभ की परिस्थितियों को उसी उमग से कुरेदकर देखते हैं जैसे कि अधसूखे घाव को, यह जानते हुए भी कि उससे सिर्फ हानि की ही सम्भावना है। रेस्तरा के प्रसग की पर्यालोचना करके मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि सुधीर मेरी अपेक्षा अधिक समृद्ध था, और वह इसे सचेत रूप से समझता था। इसीसे उसे यह सहज साहस हुआ कि वह मेरे हाथ से बिल लेकर उसका पेमेण्ट कर दे। मुझे महसूस हुआ कि अरुनर भी इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझती थी। मुझे मर्मान्तक पीडा हुई।

उस दिन जब मैं घर पहुचा तो बहुत आन्दोलित था। कपडे उतारने खडा हुआ तो मुझे लगा कि वे कपडे एकदम ही खराब और निरर्थक हैं। सफेद साधारण जीन की पतलूनें जो न जाने कितने बरस पहले बनाई गई थीं, अभी तक चली जा रही हैं, कम्बख्त फटने का नाम ही नहीं लेतीं। गत वर्ष जूते खरीदे थे, और खुद पसन्द करके बाटा की दुकान से खरीदे थे, वे भी अभी तक साबुत हैं, यद्यपि अब पालिश करने पर भी उनमें वह चमक नहीं आती। लेकिन इस सूक्ष्म भेद को इस घर में कौन समझता है। पिताजी से कहूगा तो वे साफ उत्तर देंगे—"पिछले बरस ही तो तुमने जूते खरीदे थे, और उस वक्त कहा था कि कम से कम दो बरस चलेंगे।" सिर्फ पैरों की रक्षा के लिए नहीं, बल्कि सौन्दर्य के लिए भी जूते और वस्त्र पहने जाते हैं, यह बात पिताजी की समझ में कैसे आ सकती है।

उस दिन रेस्तरा में मैंने सुधीर की समूची पोशाक को बडे ध्यान से देखा था। कपडे पहनने की कला में वह अरुनर से एक कदम आगे भले ही हो, पीछे हरगिज नहीं है। उसकी कमीज और पैण्ट बडे स्वच्छ और चमकीले थे। उसके जूते देखने से लगता था जैसे अभी ही दुकान

से लाए गए हैं। इधर मैं भी हर चौथे दिन कपडे बदलकर विश्व-विद्यालय जाने लगा था, फिर भी मेरे कपडो मे वह आभा और सफाई न दिखाई पडती जो सुधीर आदि कतिपय छात्रो के वस्त्रो मे होती थी। आज रेस्तरा मे बैठे हुए मुझे सहसा यह आभास हुआ कि सुधीर के वस्त्रो की चमक और शोभा का कारण सिर्फ यह नही था कि वह उन्हे जल्दी-जल्दी धुलाता और बदलता था, बल्कि यह कि वे बहुत ही ऊची क्वालिटी के कपडो से बनाए गए थे। मुझे महसूस हुआ कि मैं कपडो की उन किस्मो के नाम भी ठीक से नही जानता था—यही कारण था कि अपने लिए नये कपडे खरीदते हुए भी मैं उचित पसन्द नही कर पाता था।

मेरे इस अज्ञान का प्रमुख कारण मेरे पिताजी थे, यह सोचकर मुझे उनके प्रति खीझ और नाराजी हुई। साझ को, ऐसी ही कुछ बातो की चर्चा करते हुए, मैं पिताजी से झगड पडा।

"आप चाहते है कि मैं प्रतियोगिता परीक्षा मे बैठू, आप जानते हैं इन परीक्षाओ मे बैठने वाले किस तरह की ड्रेस पहनते हैं? वे ऐसी रद्दी पतलूने नही पहनते जैसी आपने मेरे लिए बनवा दी हैं और न इतनी घटिया टाइया ही इस्तेमाल करते है। पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य इण्टरव्यू मे इन सब चीजो को देखते हैं, और उनपर नम्बर देते हैं।"

"ठीक है।" पिताजी ने आश्चर्य और मनुहार के मिश्रित स्वर मे कहा, "लेकिन अभी तो प्रतियोगिता परीक्षा बहुत दूर है, पहले बी० एस-सी० तो पास कर लो।"

मैं पिताजी को कोई उत्तर नही दे सका, पर मन मे विशेष क्षुब्ध था। पिताजी को सिर्फ प्रतियोगिता परीक्षा की चिन्ता है, यो विश्वविद्यालय मे मेरा कितना मानापमान होता है, इसकी कोई परवाह नही है। और इस मानापमान के कारण जो मेरी पढाई मे विघ्न पडता है, उससे भी वे एकदम बेखबर हैं।

लेकिन ये भावनाए पिताजी पर प्रकट नही की जा सकती थी। उनसे यह भी नही कहा जा सकता था कि मुझे जेब-खर्च कुछ ज्यादा मिलना चाहिए क्योकि मेरी कुछ सामाजिक ज़रूरते है। पिताजी मुझे बहुत प्यार करते थे, फिर भी मेरे कष्ट के सबसे महत्त्वपूर्ण कारणो की उन्हे कुछ भी खबर नही थी।

आज सोचता हू कि जहा बाहरी दृष्टि से पिताजी का यह कहना ठीक था कि अभी प्रतियोगिता परीक्षा दूर है, वहा, उस परीक्षा की मानसिक तैयारी की दृष्टि से, मेरी भावना ही ज्यादा सही थी। अच्छे वस्त्र न सिर्फ हमे बाहर ही सम्मान दिलाते है, बल्कि स्वय हमारे आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास मे भी वृद्धि करते है। ये अन्तिम भावनाए पब्लिक सर्विस कमीशन के सामने सफलतापूर्वक उपस्थित होने के लिए ज़रूरी है।

पता नही मेरे क्या कह देने पर उस दिन पिताजी मुझपर बिगड गए थे। कहा था—"खर्च बढा लेना जितना आसान है, उतना रुपया पैदा करना नही। मेरी जितनी हैसियत है उसके अनुरूप ही तुम्हारे शौक पूरे कर सकता हू। इससे ज्यादा तो तभी हो सकता है जब तुम अच्छी नौकरी करके खुद बहुत-सा रुपया कमाओ।"

पिताजी की ये बाते मुझे बहुत बुरी लगी थी, और बहुत दिनो तक उनकी याद मन मे चुभती रही थी। इसस पहले और इससे बाद भी पिताजी कई बार परिश्रम का महत्त्व समझाने के लिए मुझे अपने सघर्ष-भरे जीवन का इतिहास सुना चुके थे। पिछले कई बरस से वे ट्रेज़री-ऑफिसर थे, किन्तु वे सदा से उस पद पर नही थे। वस्तुत उन्होने अपनी ज़िन्दगी बहुत ही निचले स्तर पर शुरू की थी। वे प्रारम्भ मे सिर्फ एक मामूली क्लर्क थे। बडे परिश्रम और लगन से अपना काम करते हुए, और बडी चतुराई से ऊपर के अफसरो को प्रसन्न करते हुए, वे क्रमश इस पद तक पहुचे थे। उन्हे लडकपन मे विशेष पढने-लिखने की सुविधा न मिल सकी, दूसरी किसी तरह की सुविधाए भी नही मिली।

सदैव उन्हे अपने सघर्ष पर निर्भर करना पडा। वे जो कुछ बने, अपने प्रयत्नो से। इस समय भी वे चार सौ, साढे चार सौ के लगभग ही वेतन पाते थे। और वे मुझे समझाते—"तुम्हे तो बहुत-सी सुविधाए मिली हुई है। उस तरह का सघर्ष भी नही है। तुम्हारी यह महत्त्वाकाक्षा होनी चाहिए कि तुम बहुत बढिया नौकरी प्राप्त करो।"

अब मुझे जब कभी भी पिताजी के सघर्षमय जीवन की याद आ जाती है तो मैं सिहर उठता हू। मुझे खेद होता है कि मैं उस समय क्यो इतना नासमझ था, और क्यो नही पिताजी की बातो को उचित रोशनी मे देख पाता था। जो, अभिलाषाए और कामनाए उस समय मेरे लिए एकदम वर्जित होनी चाहिए थी—इसलिए कि मैं एक धनी पिता का पुत्र न था, और इसलिए भी कि मैं मात्र विद्यार्थी था—उन्हें मैं क्यो प्रोत्साहित करता और पोसता रहा? इसके साथ ही, उस समय की खुद अपनी विलष्ट भावनाओ को याद करते हुए, मुझे यह भी खयाल होता है कि मेरे अपने बच्चो को मेरी तरह हीनता-बुद्धि को ढोते हुए दुनिया मे जीवन-यात्रा न करनी पडे।

इन्ही दिनो मुझे नुपमा का एक लम्बा पत्र मिला। उस पत्र मे कुछ अजीब बातें थी—कुछ लोगो के सुख-दु ख की अजीब-सी कथाए। यदि इतना ही होता तो शायद मुझे वह पत्र वैसा असह्य न लगता। किन्तु उसमे जैसे यह प्रच्छन्न याचना थी कि मुझे पत्र मे उल्लिखित दुखी जनो के लिए कुछ करना चाहिए। स्वय मेरा दु ख बाटने के लिए तो कोई नही था, किन्तु मुझे अपने दु ख मे साझी बनाने के लिए अनेक सुहृद् मौजूद थे।

नुपमा ने कुछ बातें भाभी के बारे मे लिखी थी और कुछ किशन भैया के। भाभी के तत्कालीन कुछ कष्टो की शुरुआत इस तरह हुई। उनके पास अपने ननदोई यानी शोभा के पति का एक पत्र बरामद हुआ। उस पत्र मे अन्तरग परिचय का स्वर था जो आपत्तिजनक समझा गया। (शोभा के पति आर्ट्स के ग्रेजुएट थे और किसी ऑफिस

मे दो सौ, सवा दो सौ के वेतन पर काम करते थे। उस पत्र को लेकर किशन भैया ने भाभी पर बहुत रोष प्रकट किया था। इस सम्बन्ध में, दामाद का पक्ष लेने के कारण, भैया की मौसीजी से भी कहा-सुनी हो गई थी। भाभी ने पति की भर्त्सना का इतना बुरा माना कि वे आत्म-हत्या करने पर उतारू हो गई। घर मे रखी हुई भैया की किसी खाई जानेवाली दवा की एक पूरी शीशी उन्होंने पी डाली। उसके बाद उनके पेट मे बडी जलन पडने लगी और परेशान होकर जब वे जीना उतरकर नीचे जाने लगी तो काफी ऊचाई से लुढककर गिर पडी। तुरन्त डाक्टर को बुलाया गया। भाभी तो किसी तरह बच गई, लेकिन उनके पेट का बच्चा गिर जाने के धक्के और चोट से जाता रहा। "इससे पहले मैं नही जानती थी, भैया, कि भाभी को इतना गुस्सा है। ऐसे तो बात करने से जान पडता है कि उनमे मिठास ही मिठास है। और भाभी बहुत कमजोर भी हो गई हैं। किशन भैया की तबीयत भी ठीक नही रहती। डाक्टरो ने बताया है कि उन्हे 'कोलाइटीज़' हो गया है। यहा किसीकी समझ मे नही आया कि यह बीमारी क्या है। कहते है कि 'कोलाइटीज़' आतो की बीमारी है। यो बाहर से देखने मे तो किशन भैया के शरीर मे कोई खराबी नजर नही आती।"

पत्र मैंने पढा, बाहर से वह समझ मे भी आया, लेकिन उसके आन्त-रिक, मानवी पहलू को मैं बिलकुल ही हृदयगम नही कर सका। इस समय अपनी उस वक्त की मन स्थिति को याद करके बडा आश्चर्य होता है। शायद वह मनुष्य जो स्वय विपद्-ग्रस्त होता है दूसरो के सुख-दु ख को अपेक्षित सहानुभूति नही दे पाता। मेरे सामने जो निजी उलझने और समस्याए थी, उन्होंने मुझे इस योग्य नही छोडा था कि मैं भाभी और भैया के सम्बन्ध मे रुचि लेते हुए कुछ सोच सकू। उलटे मेरे मन मे आया—किशन भैया को 'कोलाइटीज' या कुछ हो गया है तो मैं क्या करू, हमारे घर मे इतनी जगह भी कहा है कि

उन्हे बुलाकर रखा जाए। और फिर कौन उनका इलाज कराएगा, और कौन तीमारदारी करेगा? यहा अपना खर्च ठीक से चलता ही नही।

मुझे फिर मुर्घार, रेन्तरा तथा अपने कपडो की तीखी याद आई, और मैं फिर अपने अपमान और अभावो की स्मृति तथा तज्जन्य वेदना से जलने लगा।

मुझे फिर कभी अख्तर को चाय का निमन्त्रण देने का साहस नही हुआ, यद्यपि मेरे मन मे यह लालसा बराबर बनी रही कि चाय पर साथ बैठकर मैं उससे बातें करने का अवसर प्राप्त करू। मैं अपनी पूर्व असफलता के दाग को धोना भी चाहता था। किन्तु पूरे सेशन मे मैं उसका कोई उपयुक्त अवसर नही पा सका। शायद इसका एक प्रच्छन्न कारण मेरी आत्मविश्वास की कमी भी थी।

अप्रैल का महीना था, परीक्षाए चल रही थी। उन्हीके अन्तराल मे एक दिन रीडिग रूम मे बैठा मैं एक अप्राप्य पुस्तक के नोट तैयार कर रहा था। वहा से ऊबकर मैं रेस्तरा मे पहुचा। देखा, अख्तर अपनी एक सहेली के साथ डटी हुई है। मैं जाकर, नमस्ते करके, उसीके पास बैठ गया। वह दही की लस्सी पी रही थी, जबकि सहेली चाय और टॉस्ट ले रही थी। लस्सी समाप्त कर अख्तर ने एक टोस्ट उठा लिया और उसे कुतरने लगी। इस बीच मे मैं भी लस्सी का आर्डर दे चुका था।

इन दिनो मैं घर पर अक्सर लस्सी पीता था, और जानता था कि यह काफी ठोस भोजन हो जाता है। अख्तर लस्सी पी रही है, टोस्ट उसके सामने रखे है, अब उसे अब और किसी खाद्य की दरकार न

होगी, यह सोचकर मैंने उससे बिलकुल ही नही पूछा कि वह कोई दूसरी चीज़ लेगी। लस्सी का गिलास आ जाने पर मैं धीरे-धीरे उसे 'सिप' करने लगा। अख्तर क्रमश टोस्ट समाप्त कर रही थी।

इतने मे सहसा वहा शौकत ने पदार्पण किया। सुधीर की अपेक्षा शौकत मुझसे ज्यादा मीठा सभाषण करता था। वह आकर बैठा, और उसने अलग-अलग हम तीनो को आदाब-अर्ज किया। फिर शीघ्रता से 'बेयरा' को आवाज़ देते हुए उसने अख्तर तथा उसकी साथिन से कहा—"बतलाइए, आप लोगो के लिए क्या मगाया जाए?"

अख्तर ने मुस्कराकर कहा—"दाल-मोठ।" शौकत ने दाल-मोठ और चाय के साथ ही बिस्कुटो का भी आर्डर कर दिया। मेरे सामने ही ये सब चीजें आई, और अख्तर ने दाल-मोठ ही नही, बिस्कुटो मे से भी हिस्सा लिया।

उस दिन मैं फिर परास्त होने का भाव लेकर लौटा। साथ ही मुझे एक नये तथ्य का साक्षात्कार हुआ—अमीर लोग कपडे ही अच्छे नही पहनते, वे खाते भी बहुत हैं। और मुझे महसूस हुआ कि लखनऊ आने के बाद, दूसरी चीजो पर खर्च बट जाने के कारण, मेरे परिवार के खान-पान का स्टैण्डर्ड कुछ नीचा पड गया था।

उसके बाद मैंने कभी अख्तर को चाय पिलाने का इरादा नही किया। मुझे लगता कि मैं उसे इस प्रकार का निमन्त्रण देने के योग्य नही हू, कि एक खास अर्थ मे उससे निम्न श्रेणी, निम्नतर वर्ग का हू। अपनी हीनता के इस कडवे, कठोर अनुभव ने मेरे अन्तर को क्षुब्ध और आन्दोलित कर दिया।

और मैंने मन ही मन सकल्प किया कि मुझे एक बडा आदमी बनना है, एक अमीर आदमी, ताकि भावी जीवन मे इस प्रकार के अनुभवो की आवृत्ति न होती रहे। दुनिया के समस्त दूसरे मूल्य मुझे हेय और गौण जान पडने लगे।

अभी मेरी काफी परीक्षा बाकी थी। बी० ए० फाइनल के सारे

परीक्षार्थी एक बड़े हॉल मे बैठते। इस हॉल के एक सिरे पर अख्तर और सुधीर थे, वे एक-दूसरे के निकट भी थे। शौकत और मैं हाल के दूसरे सिरे पर थे। अभी तक मेरा यही क्रम रहा था कि परीक्षा से पहले अख्तर से भेंट कर लू, और उसके प्रति शुभ कामनाए प्रकट कर दू। शौकत और सुधीर भी अख्तर के पास पहुचते थे। किन्तु रेस्तरा की उक्त घटना के अगले दिन मैं अख्तर के पास नहीं पहुचा, मैं जान-बूझकर उसकी उपेक्षा करना चाहता था। मैं शौकत से भी बात नहीं करना चाहता था, यद्यपि उसके प्रति मेरे मन मे कोई दुर्भाव नहीं था। मैं चुपचाप जाकर अपनी सीट पर बैठ गया। तुरन्त ही शौकत उधर से निकला और मुझे आदाब-अर्ज करता हुआ अपनी सीट की दिशा म चला गया। उसके दीखने ने मेरी पिछले दिन की स्मृति को फिर ताजा कर दिया। मैं मन ही मन आकुलित हो उठा। अख्तर और सुधीर मुझसे दूर थे, पर मुझे लगने लगा कि वे मेरे पास ही बैठे है और आपस मे हस-हसकर बाते कर रहे है। वे हस रहे है और मेरी ओर देख रहे है, जैसे मैं उनसे एक भिन्न कोटि का जीव या कोई उपहास की चीज होऊ। मुझे प्रतीत हुआ कि उन सफल लोगो के बीच मैं एक अजनबी था, क्योकि सामाजिक व्यवहार के धरातल पर मैं उनमे से था जो सफल होने की क्षमता नही रखते।

प्रश्नो का उत्तर देते-देते बरबस मेरे सामने रेस्तरा के विभिन्न दृश्य आ जाते। कभी-कभी मुझे भय होता कि कहीं मैं विशिष्ट प्रश्न का उत्तर देने के बदले कुछ और न लिखने लगू। कभी अपने मन को व्यवस्थित बनाने के लिए मैं लिखते-लिखते बीच मे रुक जाता। फल यह हुआ कि उस दिन के पर्चे मे मेरा एक प्रश्न छूट गया, पर मेरा चित्त स्थिर न था। अगले दिन की परीक्षा के लिए भी मैं ठीक से न पढ सका।

मेरा परीक्षा देना मेरे ही लिए नहीं बल्कि मेरे माता-पिता के लिए एक बड़ी घटना की अहमियत रखता था। पिताजी की आदत सवेरे

उठने की थी, उठने के कुछ ही देर बाद वे मुझे जगा देते। चाहते कि मैं कुछ देर अपनी कोर्स की पुस्तकें देख जाऊ। उसके बाद मेरे नाश्ता करके समय पर चल देने का वे पूरा ध्यान रखते। माताजी भी मुझे ठीक से नाश्ता कराने के फेर मे व्यस्त दिखाई देती। विश्वविद्यालय चलते समय मैं प्राय माताजी तथा पिताजी दोनो से अलग-अलग उनकी ओर देखते हुए कहता "अब मैं चलता हू," जिसका मतलब होता कि वे चुपचाप मुझे पर्चा ठीक करने का आशीर्वाद दे दें। मेरे लौटकर आने पर पिताजी प्राय उपस्थित न होते, पर्चे के बारे मे माताजी ही पूछ लेती। किन्तु खजाने से लौटने पर कपडे उतारते-उतारते पिताजी माताजी से या स्वय मुझसे यह खबर ले लेते कि मैंने पर्चा कैसा किया है। पिछले अनेक वर्षों मे परीक्षा के सिलसिले मे मेरा और घर वालो का यही क्रम था।

हर वर्ष की भाति इस बार भी पिताजी मेरे पर्चो के बारे मे पूछा करते। मैं बडे असमजस मे पड जाता। प्रारभ मे मेरे पर्चे अच्छे हुए थे, लेकिन इधर कई पर्चे खराब हो गए। पिताजी के पूछने पर मैंने यथाशक्ति अविचल मुद्रा से उन्हे सूचित करने का प्रयत्न किया कि पर्चे ठीक ही हुए हैं, यद्यपि विशेष अच्छे नही हो सके है। फिर भी उनके चेहरे पर आशा की शिथिलता से उत्पन्न खिन्नता का भाव आए बिना नही रहा।

परीक्षा समाप्त होने के दूसरे या तीसरे दिन पिताजी ने गम्भीरता से पूछा—"कुल मिलाकर पर्चे कैसे हुए है? फर्स्ट क्लास आ जाएगा?"

उनके प्रश्न करने की मुद्रा से स्पष्ट था कि वे किस तरह का उत्तर चाहते हैं। मैंने अपने मे इतना साहस महसूस नही किया कि अपनी मनोभावना को सही-सही प्रकट करके उन्हे कष्ट पहुचाऊ। मैं निश्चय से जानता था कि मेरा फर्स्ट क्लास नही आ सकेगा, फिर भी परीक्षा-फल आने तक पिताजी को अनुकूल दुविधा मे रखा जा सकता था। मैंने कहा—

"फर्स्ट क्लास तो आ ही जाना चाहिए, यद्यपि अव अच्छे पोजीशन की उम्मीद नही है।"

प्राय दो हफ्ते वाद पिताजी ने जव फिर वह प्रश्न दुहराया तो मैंने उसी उत्तर की कुछ कम विश्वास के साथ आवृत्ति कर दी। कहा—"निश्चय तो नही है, लेकिन काफी आशा है।"

ज्यो-ज्यो परीक्षा-फल निकलने का समय निकट आता जाता था, त्यो-त्यो पिताजी की उत्सुकता और मेरी वेचैनी वढती जाती थी। एक दिन उन्होंने कहा—"रजिस्ट्रार के ऑफिस मे तो अखवार मे निकलने से दो-तीन दिन पहले ही नतीजा 'आउट' हो जाता है, तुम जरा ध्यान कर लेना।"

मैंने उत्तर मे उन्हे आश्वासन दिया कि मैं इस वारे मे सतर्क था। किन्तु वास्तव मे मेरे मन मे परीक्षा-फल के लिए कोई उतावलापन नही था। मैं अच्छी तरह जानता था कि मेरा नतीजा क्या होगा, और उसके लिए मन से तैयार भी हो रहा था। मुझे चिन्ता थी तो यही कि मेरा सेकण्ड क्लास देखकर पिताजी की क्या प्रतिक्रिया होगी।

वाद की घटनाओ ने यह सिद्ध कर दिया कि मेरी चिन्ता निराधार या व्यर्थ नही थी। पिताजी वातचीत तथा स्वभाव से आशावादी थे। भविष्य को लेकर सुनहले स्वप्न देखना उन्हे पसन्द था। स्वय अपने जीवन मे वे क्रमश उन्नति ही करते रहे थे और उनका यह विश्वास था कि उचित मनोयोगपूर्वक की हुई कोशिश अवश्य ही सफलता लाती। भविष्य के सम्वन्ध मे आशावान रहते हुए हमे अपने प्रयत्न मे कमी नही करनी चाहिए—इस तरह का उपदेश वे मुझे अक्सर देते। साथ ही पिताजी मे एक कमजोरी थी, विशेषत मुझे लेकर। वे न केवल यह चाहते थे कि मेरा भविष्य उज्ज्वल हो, वल्कि अपनी कामना के अनुकूल विश्वास भी रखते या रखना चाहते। अक्सर अपने मित्रो के सामने वे उन स्वप्नो की चर्चा करते जिन्हे वे मेरी भावी उन्नति के सम्वन्ध मे देखा करते। मेरे एफ० ए० के परीक्षा-फल मे उन्हे यह पूरा

विश्वास हो गया था कि मैं एक होनहार विद्यार्थी और नवयुवक हू, वे आशा कर रहे थे कि इस वर्ष भी मेरी परीक्षा का परिणाम उतना ही अच्छा होगा। माताजी के और मेरे सामने भी दो-एक वार वे अपना यह सकल्प प्रकट कर चुके थे कि इम्तहान का नतीजा निकलने के बाद मित्रो को पहले की तरह एक अच्छी दावत देगे।

इसीलिए जब परीक्षा-फल उनकी आशाओ के प्रतिकूल निकला तो उन्होंने साधारण से ज्यादा कष्ट महसूस किया। अखबार मे रोल नम्बर खोज लेने के लिए मेरी अपेक्षा वे अधिक व्यग्र थे और उसे अच्छी तरह देख लेने के बाद मेरी तुलना मे वे ही अधिक व्याकुल और परेशान भी दिखाई दिए।

उनकी इस व्याकुलता और कष्ट को दूर करने के लिए मैं कुछ भी नही कर सकता था। अपनी इस असमर्थता का मुझे खेद था। फिर भी मैं उतना अधिक निराश होने का कोई कारण नही देखता था। मुझे अपने मे विश्वास था, मैं जानता था कि मेरा फर्स्ट क्लास न आ सकने का कारण मेरी अयोग्यता या अक्षमता न होकर दूसरी परिस्थितिया थी। किन्तु मैंने पाया कि अब पिताजी को अपने भविष्य के बारे मे आश्वस्त करना बहुत कठिन था।

दो-चार दिन बाद उन्होंने असहाय खीझ और नाराजी के स्वर मे मुझसे कहा—"भविष्य के बारे मे क्या सोचा है? मुझे अब उम्मीद नही कि तुम प्रतियोगिता-परीक्षा मे सफल हो सकोगे। जब तुम एक क्लास के छात्रो मे कोई पोजीशन न पा सके तो ऑल इण्डिया सर्विसेज़ की परीक्षा मे क्या कर सकोगे?"

मेरी समझ मे नही आया कि क्या उत्तर दू। मैं पिताजी को यह कैसे समझाता कि परीक्षा-फल के कारण इतने निराश होने की ज़रूरत नही थी। यह मैं जानता था कि केन्द्रीय प्रतियोगिता मे सफल होना आसान नही था। मैंने यह भी सोच रखा था कि उक्त प्रतियोगिता मे सफल न हो सकने पर मैं वकालत मे अपने भाग्य की परीक्षा करूगा।

शुरू से मैं विभिन्न संस्थाओं के वादविवादों में सफलता से भाग लेता आया था और मुझे विश्वास था कि मैं अच्छा वकील बन सकूंगा।

"मेरा इरादा है कि गणित से एम० एस-सी० और उसके साथ लॉ ज्वाइन करूं," मैंने पिताजी से कहा।

इस सम्बन्ध में उन्हें आने वाले दिनों में विमर्श करने के लिए छोड़-कर माताजी के साथ मैं बिजनौर चला गया।

इस बार मैं बिजनौर बहुत दिनो मे पहुचा था। बिजनौर से लखनऊ जाते वक्त यह सोचा था कि वहा से बिजनौर का चक्कर काटने आ जाना मुश्किल नही होगा, कि लखनऊ रहने से पहले के परिचयो और और स्नेह-सम्बन्धो मे कोई खास अन्तर नही पडेगा। उस वर्ष सुषमा की मानी के बहाने शीघ्र ही बिजनौर आना हो भी गया था। किन्तु उसके बाद लखनऊ से बिजनौर पहुचना क्रमश कठिन से कठिनतर जान पडता गया। अनेक कारणो मे इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि लखनऊ पहुचकर हम लोगो का खर्च बढ गया था और बिजनौर आने-जाने मे व्यर्थ ही व्यय करना उचित नही समझ पडता था। यह सोचा गया था कि सब लोग सुषमा की शादी मे बिजनौर पहुचेंगे, किन्तु वर के इजीनियरिंग मे पढते होने के कारण वह शादी अभी टलती ही जा रही थी।

इस बार चाचाजी तथा सुषमा के प्रबल सम्मिलित आग्रह से यह बहुत पहले तय हो चुका था कि छुट्टियो मे मुझे कुछ दिनो बिजनौर जरूर रहना पडेगा। परीक्षा-फल खराब हो जाने के कारण इस बार मैं लखनऊ मे प्रसन्न भी नही था। माताजी मेरी मन स्थिति को समझती थी, उन्होने तय किया कि बिजनौर होते हुए हम लोग कुछ दिन हरिद्वार जाकर

ठहरेंगे।

मैं लखनऊ से सचमुच ही ऊबने लगा था। मुझे लगता था कि वहा कोई मेरा अपना नही है—कोई ऐसा व्यक्ति जो मेरी सफलता और असफलता, मेरी गरीबी या सम्पन्नता का हिसाब किये बिना मुझे स्नेह दे सके। मुझे प्रतीत होता कि लखनऊ एक सघर्ष और कशमकश की जगह है, जहा सामाजिक सफलता के अलावा किसी चीज के लिए स्थान नही है। वहा न हृदय की ऋजुता और स्नेह का कोई महत्व था, न ऊचे सकल्पो का। वहा किसीको इतना अवकाश न था कि एक टूटे हुए मन या थके हुए मस्तिष्क को समवेदना का अनुलेप दे सके।

बिजनौर पहुचकर मुझे लगा कि वहा का वातावरण लखनऊ से एकदम भिन्न है। यह भिन्नता पहले भी अनुभव की थी, पर तब प्रत्येक दृष्टि से बिजनौर लखनऊ से हीनतर जान पडा था। इस बार उसकी भिन्नता दूसरी ही रोशनी मे दिखाई दी। चाचाजी पिताजी से भिन्न ही नही, अधिक सरल और कोमल भी जान पडे। और सुषमा तो मानो साकार स्नेह ही थी। कहा सुषमा और कहा विश्वविद्यालय की व्यवहारकुशल, रुखी लडकिया—मैंने सोचा। सुषमा और चाचाजी दोनो ही जानते थे कि मुझे परीक्षा मे दूसरी श्रेणी मिली है, पर उनमे से किसीने भी न तो इसपर आश्चर्य ही प्रकट किया और न विशेष खेद ही। वास्तव मे खेद का जो कुछ प्रकाशन हुआ वह मेरी ओर से। उसके विपरीत उस घर के प्रत्येक सदस्य ने स्नेहातिरेक से एक बात को विशेष रूप से लक्षित किया, यह कि मैं पहले से दुबला हो गया था।

दूसरे दिन माताजी ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं जाकर किशन भैया की खबर ले आऊ। किसी कारण से वे स्वय दो-एक दिन रुककर जाना चाहती थी। सुषमा से हमे यह भी पता चला कि मौसीजी उन दिनो घर पर नहीं थीं।

मुझे याद नहीं आता कि मैं कभी भी खास तौर से किशन भैया से मिलने उनके घर गया होऊ। बचपन मे मैं प्राय मा के साथ ही

मौसी के घर जाता था। मौसी मुझे अच्छी लगती थीं, पर उनसे भी ज्यादा मुझे शोभा प्रिय थी। ताश खेलने का मुझे बचपन से ही शौक था, और मैंने यह भी पता पा लिया था कि इस खेल मे शोभा की भी विशेष रुचि है। इधर जब से भाभी आई थीं, मेरे लिए मौसी के घर जाने का मतलब भाभी से मिलने जाना ही बन गया था।

मैंने पहुचकर पाया कि भाभी घर मे अकेली हैं। वे पलग पर बैठी मजुल का कोई कपडा सी रही थी। मुझे देखते ही मधुर भाव से मुस्कराती हुई सहसा उठकर खडी हो गई।

मुझे लगा जैसे अरसे से किसीने इस तरह मुस्कराकर मेरा स्वागत नही किया है। मानो एक अप्रत्याशित प्राप्ति की मधुमय प्रसन्नता यकायक भाभी के नेत्रो और होठो की स्मित-रेखाओ मे फूट पडी हो।

बडे ही कोमल भाव से मुझे अपने निकट ही कुरसी पर बिठाते हुए भाभी ने कहा—"बहुत दिनो मे आए देवर, अच्छे तो हो न, मौसीजी भी आई होगी।"

वस्तुत सुषमा से भाभी को पहले ही पता हो गया था कि हम लोग आने वाले हैं।

"सब ठीक है," मैंने कहा, "लेकिन परीक्षा मे मेरा सेकण्ड क्लास ही आया।"

भाभी ने इस बात को तो सुना नही या सुनकर महत्त्व नही दिया। बोली—"लखनऊ से आकर तो बिजनौर बहुत ही नीरस लगता होगा। लखनऊ छोडने को जी नही होता, है न ?"

"नहीं भाभी, इस बार तो मैं लखनऊ से ऊब गया। पता नही कभी-कभी वहा कैसा लगता है। ऊची-ऊची इमारतें, तारकोल की सडकें लगता है जैसे वातावरण मे सब तरफ सख्त ही सख्त है। कभी-कभी जी होता है कि लखनऊ छोडकर एकदम किसी बहुत छोटी जगह चला जाऊ—किसी गाव मे, या किसी ऐसी जगह जहा शहर का हगामा बिलकुल ही न हो।"

"अब आगे क्या इरादा है, कम्पेटीशन मे बैठोगे ?"

"मैंने सोचा है लॉ और एम० ए० ज्वाइन कर लू, कम्पेटीशन मे बैठने की हिम्मत नही होती।"

"क्यो ? हिम्मत की क्या बात है ? क्या सेकण्ड क्लास आया इस-लिए ?"

"पिताजी का खयाल है कि शायद मैं ऑल इण्डिया परीक्षाओ मे सफल न हो सकू, प्रान्तीय सर्विसें मुझे पसन्द नही हैं। दूसरे, मैं कुछ ज्यादा आज़ाद तबीयत का जीव हू, सरकारी नौकरी मुझसे निभेगी नही।"

"यह तो ठीक है, मेरे बाबूजी भी यह सोचकर कभी प्रतियोगिना-परीक्षाओ मे नही बैठे। लेकिन फिर करोगे क्या ?"

"गणित मे एम० एस-सी० कर लूगा। सुविधा मिलेगी तो उसी मे रिसर्च करूगा, नही तो फिर वकालत करूगा, मेरी उधर रुचि भी है।"

"वकील तुम अच्छे बनोगे देवर, इसका मुझे विश्वास है," कहकर भाभी मुस्कराईं।

"यह तुमने कैसे जाना कि वकील मैं अच्छा बनूगा ? पहले से कोई क्या कह सकता है !"

"मैं जानती हू, तुमसे तर्क करने की और समझाने की दोनो ही शक्तिया हैं। याद है, एक बार तुमने मुझे समझाया था कि कर्म का सिद्धान्त तर्कसगत नही है, उस वक्त तुमने जो युक्तिया दी थीं वे मुझे अभी तक याद हैं।"

"तो भाभी, अब तुम भी कर्म की थियरी मे विश्वास नही करती ?"

"करना तो नही चाहती, सोचती हू कि हमे स्वय, अपने प्रयत्न से, अपने भाग्य को बना सकना चाहिए। लेकिन ऐसा हो कहा पाता है !"

सहसा मुझे याद आया कि स्वय मैंने भाभी से कुशल-क्षेम तक नही पूछी, और भैया के बारे मे भी नही पूछा, जिसके लिए माताजी ने मुझे

खास तौर से भेजा था। बात यह थी कि भैया को घर मे न देखकर मैंने अनुमान कर लिया था कि वे अच्छे हैं। किन्तु इसके साथ ही मैंने यह भी देखा था कि भाभी पहले से दुबली हो गई हैं—यद्यपि इससे उनके आकर्षण मे कोई अन्तर नही आया था। मुझे स्मरण हुआ कि सुषमा ने भाभी के बारे मे क्या-क्या लिखा था। क्या वह सब सच था, क्या सचमुच भाभी ने आत्महत्या की कोशिश की थी, क्या नितान्त मधुर और शान्त दीखने वाली भाभी वैसी हरकत कर सकती थी ?

मैंने पूछना चाहा, पर समझ मे नही आया कि कैसे पूछू। बोला तो कुछ और ही कह गया—"भैया की तबीयत कैसी है, भाभी ?"

"उनकी तबीयत बहुत गडबड चल रही है, कोई दवा लगती ही नही। कभी तकलीफ बढ जाती है तो घर पड जाते हैं, नही तो दुकान जाते रहते है। इधर पाच-चार दिन से तो कुछ ठीक हैं," कहकर सहसा वे उदास हो गई।

"मंजुल कहा है, भाभी ? दुकान गई है ? अब तो बडी हो गई होगी।"

"हा, करीब ढाई बरस की हो गई," भाभी ने चमकते हुए नेत्रो से कहा, "दुनिया-भर की बातें करती है। दुकान भेज दी थी, अब आती ही होगी।"

"और मौसीजी ? सुना है वे मेरठ गई हैं ?"

"हा, रिश्तेदारी मे कही शादी है। तबीयत ठीक होती तो उनके लडके भी जाते।"

विपिन भैया की ओर संकेत करने का यह तरीका मुझे अजीब लगा। कुछ क्षण रुककर मैंने कहा—"भाभी, तुम बहुत उदास रहती हो, भैया क्या अब भी पहले जैसा व्यवहार करते है ?"

भाभी ने जैसे अनसुनी कर दी। उनके चेहरे से लगा कि मेरे प्रश्न से उन्हें कष्ट हुआ है। कुछ देर बाद मुस्कराने की चेष्टा करती हुई बोली—"सुना है देवर किसी मुस्लिम लडकी से शादी करना चाहते है, क्या यह

सच है ?"

"अरे नही भाभी !"

"इसमे छिपाने की क्या बात है, सुषमा के पत्र मे लिखा था न ? और फिर हर्ज भी क्या है, जहा मन मिले वहा शादी करनी चाहिए। लेकिन "

"लेकिन क्या, भाभी ?"

"यह कि इसमे बडी हिम्मत से काम लेना होगा। मौसाजी इसे हर्गिज पसन्द नही करेंगे।"

"सो मैं जानता हू किन्तु असल मे कोई ऐसी बात थी नही। मैंने तुमसे डॉक्टर भल्ला का जिक्र किया था न, वे प्रोफेसर हमे बी० एस-सी० मे भी पढाते थे। बडे क्रान्तिकारी विचार के आदमी है। खुद एक चेकोस्लोवाकिया की महिला से शादी कर लाए है। वे एक दिन कहने लगे कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी नवयुवक को अपनी जाति मे, और हो सके तो धर्म से, बाहर शादी करनी चाहिए, ताकि इस देश से सदियो से चली आने वाली जातिवाद की खराब प्रथा मिट जाए और लोग एक राष्ट्रीयता मे अनुप्राणित हो सकें। उनकी बाते सुनकर ही मैंने सुषमा को वैसा पत्र लिख दिया था।"

"यह बात थी, "मैं तो कुछ और ही समझी थी। लेकिन देवर, क्या प्रेम हो जाने पर तुम सचमुच किसी मुस्लिम लडकी से विवाह कर लोगे ?"

"क्यो नही, जरूर कर लूगा।"

"और अगर मौसाजी व दूसरे रिश्तेदार विरोध करें तो ?"

"तो भी रिश्तेदारो के विरोध की मैं इतनी परवाह नही करता। और भाभी, यदि नवयुवको मे ही यह स्पिरिट न होगी, तो इस देश का सुधार कैसे होगा ?"

"सो तो ठीक है, लेकिन जो बात सिद्धान्त मे उचित लगती है उसे भी व्यवहार मे बरतना सहज नही होता।"

"लेकिन बिना व्यवहार मे बरते तो कभी कोई परिवर्तन हो ही नही सकता। तभी तो मैंने तुमसे कहा था, भाभी, कि तुम्हे भैया की गलत बातें बरदाश्त नही करनी चाहिए।"

यह कहते-कहते मुझे कई-एक बीती हुई घटनाए याद आ गई, और पद्मा के पत्र की भी याद आई। उसके साथ ही भाभी के जीवन की सारी पृष्ठभूमि मेरी आखो के सामने कौंध गई।

"एक बात पूछू!" मैंने भाभी से, जो सहसा गम्भीर हो गई थी, कहा।

"पूछो," उन्होने उदास स्वर मे उत्तर दिया।

"शोभा जीजी के पति ने तुम्हे पत्र मे ऐसा क्या लिखा था जिससे लोग इतने नाराज़ हो गए?"

"पता नही उसमे ऐसी क्या चीज़ थी, फाड न डाला गया होता तो मैं तुम्हे दिखला देती। हुआ यह था कि एक दिन बहुत देर तक वे मुझसे बातें करते रहे थे, उन्हीका कुछ सकेत उनके पत्र मे था।"

कहते हुए भाभी के मुख पर उदासी की गहरी छाया फैल गई, माथे पर चिन्ता की रेखाए उभर आई, और वे जैसे खोई-सी क्लिष्ट भाव से किसी अज्ञात दिशा मे ताकने लगी।

मैंने उत्तेजना को दबाने की कोशिश करते हुए कहा—"इसका मतलब यह है कि तुम्हे किसीसे पत्र-व्यवहार करने का अधिकार भी नही है। क्या विवाह करने का अर्थ अपने को एक व्यक्ति के हाथ बेच देना है?"

"पता नही भैया, हमारे देश मे विवाह का क्या मतलब है। मुझे तो लगता है कि ऐसी जिन्दगी से मौत हज़ार जगह अच्छी है।" कहकर भाभी सहसा उठ खड़ी हुई और दीवार की ओर मुह करके अपनी आखें पोछने लगी।

उसी समय नौकर मजुल को लिए दुकान से आया। जीने के पास से बच्ची ने मा को आवाज़ लगाई, भाभी उसे लेने के लिए कमरे से बाहर निकल गई।

थोड़ी ही देर मे घर का वातावरण बदल गया। मजुल मा के पास

पलग पर बैठी कनखियो से मेरी ओर देख रही थी। अपने शरीर से सटे हुए बच्ची के सिर को कोमलता से थपथपाती हुई भाभी उसे मेरी ओर आकृष्ट कर रही थी।

मजुल अब काफी बडी हो गई थी, देखने मे एकदम भोली और शान्त। उसका चेहरा भाभी से कुछ भिन्न था, पर आखे वैसी ही बडी और रसीली थी। कुछ शरमाई-सी, मा की गोद मे सिमटती हुई, वह मुझे सरल कुतूहल और सहज मित्रता के भाव से देख रही थी।

"चाचाजी को नमस्ते करो, मजुल," भाभी ने कहा।

उसने नमस्ते किया। "खुश रहो," कहकर मैं कुरसी से आगे झुका और छूकर उसे प्यार करने लगा।

भाभी का 'मूड' अब बदलने लगा था। उदासी की काली छाया क्रमश वात्सल्य की सात्त्विक आभा मे विलीन होने लगी थी।

मैं मजुल को स्नेह-भरे अवधान से देख रहा था, कभी-कभी भाभी को भी देख लेता था। मैं खास तौर से मा और बच्ची के दृष्टि-विनिमय और उससे उत्थित दोनो की मधुर प्रतिक्रियाओ का निरीक्षण कर रहा था।

थोडी देर मे मेरे अनुरोध तथा भाभी के प्रोत्साहन से मजुल मेरी गोद मे आ पहुची। उसके कोमल सिर को अपने गले से सटाए मैं उसे प्यार करने लगा।

सहसा इस बीच मे भाभी ने अपनी भरपूर, मुस्कराती दृष्टि मुझपर निक्षिप्त की। उस दृष्टि मे एक अनिर्वचनीय चाव, अनिर्वचनीय परिचय और रहस्यमय आत्मीयता की न जाने कैसी अपूर्व झलक थी। मैं विभोर हो उठा, एक अनिर्वाच्य सिहरन मेरे सारे शरीर मे फैल गई। न जाने भीतर की किन तहो मे घुसकर उस दृष्टि ने मानो मुझे एक निगूढ, रहस्य-पूर्ण, आन्तरिक सम्बन्ध की अवगति से आकुलित कर दिया। एक विचित्र-सी पीडा का स्वर मेरे सारे अस्तित्व मे बज उठा, एक अजीब-सी कृत-ज्ञता की भावना से मेरी समग्र चेतना आक्रान्त हो उठी।

भाभी की वह दृष्टि एकदम असाधारण, आकस्मिक क्रिया नही थी, यह शीघ्र ही अनुभव हो गया। मुझ उस प्रकार देखकर वह फिर बच्ची की ओर ध्यान देने लगी थी और उसके कुछ देर बाद उनकी वैसी ही दृष्टि फिर मेरी दृष्टि से आकर टकरा गई थी। मेरे प्रति भाभी की अव्यक्त गूढ भावनाओ की वह दृष्टि जैसे सहज, स्वाभाविक अभिव्यक्ति थी।

दूसरी बार उस दृष्टि को मैं कुछ ज्यादा स्थिरता से देर तक देखते रह सका था, और तब भाभी ने थोडा-सा लजाकर उसे दूसरी ओर घुमा दिया था।

मैं चलने को तैयार हुआ, मेरा हृदय विचित्र ढग से धडक रहा था। बाहर छत पर पहुचकर, जब भाभी मेरे साथ-साथ चल रही थी, मैं उनसे कहना चाहता था कि 'मुझे ऐसी दृष्टि से न देखा करो भाभी, उससे अजीब-सी व्याकुलता और पीडा होती है।' पर मैं कुछ भी कह न सका।

आखो की एक विशेष मुद्रा, देखने का एक विशेष ढग अन्तर की प्रच्छन्न भावना को इतनी प्रखर अभिव्यक्ति दे सकता है, और किसीपर इतना तीव्र असर डाल सकता है—इसका ऐसा तीखा अनुभव इससे पहले कभी नही हुआ था। घर वापस जाते हुए और वहा पहुचने पर भी मैं इस अनुभूति का मर्म समझने की असफल कोशिश करता रहा।

मैं भाभी से फिर मिलने को बहुत उत्सुक था, पर संकोचवश अगले दिन उनके घर नहीं गया। उसी दिन किशन भैया हमारे घर माताजी से भेंट करने आए। स्पष्ट ही वे पहले से कमज़ोर हो गए थे, पर पूछने पर उन्होंने कहा कि आजकल वे ठीक हैं। मां ने उनसे भाभी को बुलाने का उपयुक्त दिन पूछा, भैया ने 'परसों' यानी अगले से अगले दिन भेज देने की स्वीकृति दी। यह तय हुआ कि उस दिन मैं जाकर भाभी को लिवा लाऊंगा।

वह दिन शुक्रवार था। सुबह से ही मैं इस विचार से आन्दोलित था कि मुझे भाभी के पास जाना है। मैं रह-रहकर उनके सलोने मुखड़े और उस अपूर्व चाव-भरी दृष्टि का भावन कर रहा था।

माताजी का निर्देश था कि दोपहरी से पहले ही भाभी को लिवा लाया जाए, ताकि उन्हें दिन-भर रखा जा सके। इसलिए भोजन से निबटकर मैं ग्यारह बजने से कुछ पहले ही भाभी के घर की ओर चल दिया।

किन्तु यह क्या! वहां पहुंचने पर मैंने सुना कि भैया की तबीयत ठीक नहीं है। वे स्टोर के पास वाले कमरे में पलंग पर लेटे थे। उनके पेट में निचले हिस्से में दर्द था। उसे सेंकने के लिए भाभी बार-बार रुई

की गद्दिया अगीठी पर तपा रही थी। मैंने जाकर पहले आश्चर्य प्रकट किया और फिर, भैया से आखें चार होने पर, उन्हे धीमे स्वर मे नमस्ते किया।

पलग के पास ही कुरसी पर बैठकर मैं भाभी की मदद करने लगा। गरम की हुई गद्दिया उनसे लेकर मैं क्रमश पीडित स्थान पर रखने लगा।

इसी बीच मे भैया कभी-कभी जोर से चीखकर 'हाय' करते, उनके पेडू के स्थान मे भयकर दर्द था।

कभी-कभी वे बिगडकर भाभी से कहते—"गद्दिया ठीक गरम नही हो रही है, कभी ज्यादा गरम होती हैं, कभी कम।"

"भैया, सेंकने के लिए एक रबर-बैग खरीद लो, उसमे जितना चाहो उतना गर्म पानी भर सकते हो," मैंने कहा।

भैया ने जैसे सुना ही नही। थोडी देर गद्दिया देता-रखता मैं ऊबने लगा।

भाभी ने धीरे से कहा—"तुम उधर कमरे मे जाकर बैठो, देवर यहा परेशान हो जाओगे।"

किन्तु मैं फिर भी कुछ देर तक बैठा रहा। थोडी देर बाद भैया ने करवट बदली, यह इस बात का सकेत था कि अब उन्हें सेंकने की गद्दियो की जररत नहीं हैं।

"अब वे थोडी देर मे सो जाएगे, तब तक तुम वहा चले जाओ।" भाभी ने मुझसे दूसरी बार कहा।

मैं अनिच्छापूर्वक उठकर चल दिया।

दूसरे कमरे मे मुझे पन्द्रह-बीस मिनट बीत गए, अभी तक भाभी नही पहुची। मैं ऊबने लगा। हारकर उठा, और रोगी के कमरे की ओर चल दिया।

वहा पहुचने पर देखा कि भैया ने फर्श पर ही कै कर दी है और उसपर चूल्हे की राख डालकर भाभी उसे साफ करने का उपक्रम कर

रही है।

"भाभी, रहने दो न, नौकर माफ कर देगा," मैंने कहा।

"नही भैया, नौकरो का आजकल बडा दिमाग है। दूसरे, नौकर अभी आएगा भी नही। दुकान मे घर रोटी खाने जाएगा, फिर तीन-चार बजे तक लौटेगा।"

"क्या दुकान खुली है? वहा इस वक्त कौन है?"

"मुनीमजी होगे, जब से इनकी तबीयत खराब रहने लगी है, एक मुनीमजी रख लिए गए हैं।"

भैया ने फिर करवट बदल ली थी। कुछ देर भाभी की कार्य-प्रणाली का निरीक्षण कर मैं फिर दूसरे कमरे मे चला गया। वहा एक साप्ताहिक पत्र पर नज़र डालता हुआ भाभी की आहट की प्रतीक्षा करने लगा।

फिर कुछ समय बीत गया। अधैर्य से उठकर मैं कमरे के दरवाजे पर जाकर खडा हो गया। वहा से रोगी वाला कमरा दिखाई देता था।

थोडी देर मे भाभी कमरे को पार कर छत पर कदम रखती दिखाई दी, किन्तु वे उलटे पाव ही लौट गईं। कारण यह था कि भैया अन्दर से उन्हे कडककर आवाज़ दे रहे थे।

मैं चलकर उस ओर पहुचा। भाभी कह रही थीं, "मैं समझी थी कि आप सो गए।"

भैया उत्तर दे रहे थे, "तू तो समझेगी ही कि सो गए, नही तो आगन मे यार-दोस्तो से बातें करने को कैसे मिलेगी" कहकर उन्होने भाभी को एक भद्दी-सी गाली दी।

उसी समय भाभी ने पीछे दृष्टि फेकी, जैसे जानना चाहती हो कि किसीने सुना तो नहीं। उस समय मैं चुपचाप जीने की ओर कदम बढा रहा था।

मैं घर पहुचा तो क्रोध से जल रहा था। घबराता हुआ कमरे म

मा के पास पहुचा और उनसे कहा—"मा, भाभी नही आई और आएगी भी नही।"

मेरे स्वर मे कुछ क्षोभ और वेदना थी। मा घबरा गई, बोली—"क्या बात है, वहू ठीक तो है?"

"भाभी ठीक है, पर भैया की तबीयत खराब हो गई है। और मा "

"क्या ज्यादा खराब हो गई है तबीयत?"

"नही मा, तबीयत ऐसी खराब नही है। लेकिन भैया की आदतें इतनी गन्दी है कि क्या कहू। जानती हो आज उन्होने कै की थी। पलग के नीचे पायताने की तरफ चीनी का तसला रखा था, लेकिन उन्होने यह उचित नही समझा कि एक मिनट 'कण्ट्रोल' करके उसे निकलवा ले। जी मिचलाया, और बिना कुछ सोचे फर्श पर थूकने—कै करने लगे।"

"और मा," मैंने कुछ रुककर कहा, "भाभी को वे ऐसी-ऐसी बातें कह रहे थे कि बस। उन्हे यह भी लिहाज़ नही कि कोई बाहर का आदमी आया हुआ है। उन्हे न भाभी की इज्जत का खयाल है न किसी दूसरे की। हरेक को अपनी तरह ज़लील समझते हैं। आज उन्होने जैसी बातें की वे किसी शरीफ आदमी की जबान से निकल ही नही सकती। भाभी को गालिया तक दे रहे थे, और भद्दी गालिया। जी मे आता है कि ऐसे आदमी की ज़बान खीच ले। भाभी ही हैं कि यह सब सहती है और इतना काम करती है।"

मेरा स्वर बहुत तेज़ हो गया था, मैं करीब-करीब चीख रहा था। शोर सुनकर नुपमा चाची के कमरे से निकलकर हमारे पास आ गई। उन्हे देखकर जैसे मुझे कुछ होश हुआ। स्वर नीचा करते हुए कहा—"अब मैं विशन भैया के घर कभी नही जाऊगा, मा, वे बड़े गन्दे और नीच आदमी है।"

माताजी अवाक् हुई सुन रही थी। इस तरह बोलते और बकते वे

मुझे शायद पहली बार देख रही थी। मेरे चुप हो जाने पर धीमे स्वर मे बोली—"अच्छा, अच्छा मत जाना, आ बैठ तो, जरा तेरी हवा कर दू, पसीने मे लथपथ हो रहा है। आजकल के लड़के होश मे नही रहते, मा घर नही है, इसलिए बहू को जो चाहता है कहता-सुनता रहता है। मैं चलकर किशन को डाटूगी, बेटा, न जाने अपने को क्या समझने लगा है।"

दोपहर मे मैं पडकर सो गया, मौसी के घर से धूप मे पैदल आने से मैं काफी परेशान हो गया था। साझ मे गुस्सा ठण्डा हो जाने पर मुझे यह होश आया कि मैं भाभी के घर न जाने की प्रतिज्ञा कर चुका हू। लेकिन यह प्रतिज्ञा निभेगी कैसे, बिजनौर रहते हुए भाभी से भेट किए बिना कैसे रहा जा सकता है? दो दिन इस उधेड-बुन मे पडा मैं बहुत परेशान रहा।

तीसरे दिन, लगभग साढे ग्यारह बजे, भाभी का नौकर आया। वह मेरे नाम एक छोटी-सी चिट्ठी लाया था। उसमे भाभी ने अपनी कसम देकर मुझे तीसरे पहर चार-पाच बजे आने को लिखा था।

भाभी का सन्देश पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। कुछ भी हो, भाभी के पास मुझे जाना ही पडेगा, मैंने सोचा। मुझे लगा कि इस सम्बन्ध मे भाभी और भैया मे कोई तुलना नही है, और न दोनो मे कोई मेल ही है। एक के पास जाने का अर्थ दूसरे से सम्बन्ध जोडना नही है।

फिर भी मैंने माताजी को यह बात बताना उचित समझा। और जब उन्होने अनुनय के स्वर मे कहा कि "बेटा, हो आना, भाभी तुझे बहुत प्यार करती है," तो मैंने व्यक्त अनिच्छा के साथ अपनी स्वीकृति दे दी।

जब मैं भाभी के घर पहुचा तो वे अपने सोने वाले कमरे मे थी। मजुल को बुखार आ गया था और वह वही पलग पर सो रही थी।

मुझे कुर्सी पर बिठाकर एकाएक गम्भीर हो गई। बोली—

"उस दिन तुम्हे बहुत कष्ट उठाना पडा देवर, मुझे सख्त अफसोस रहा। दो मिनट भी पास न बैठ सकी।"

भाभी जब बाते करती हैं तो उनकी आखे एक विचित्र स्निग्ध दीप्ति से चमकती रहती हैं, पर आज ऐसा न था। आज वे पलक गिराये जैसे बरबस फर्श मे घुमी जा रही थी। उनकी यह कष्टपूर्ण मुद्रा मेरे मन मे विचित्र हलचल पैदा कर रही थी।

"उसमे तुम्हारा तो कोई कसूर नही था, भाभी ? फिर मुझे क्या कष्ट हुआ, सिर्फ यही न कि तुमसे बिना बात किए चला गया। लेकिन भाभी, तुम इस घर मे कैसे रह पाती हो, उस दिन से बराबर मैं यही सोच रहा हू।"

भाभी ने कोई उत्तर नही दिया, वे उसी भाति फर्श की ओर देखती रही।

"मैंने स्वप्न मे भी नही सोचा था भाभी, कि भैया तुमसे ऐसी बाते कह सकते है, कहा करते हैं। तुम्हारी जगह मैं होता तो शायद एक दिन भी उनके साथ न रह सकता।"

"दूसरा चारा भी क्या है कभी-कभी सोचती हू कि अपनी इस अर्थ-हीन जिंदगी को खत्म ही कर दू, किन्तु बच्ची का मोह रोक लेता है।"

"नही, भाभी ऐसी बात तुम्हे दिल मे भी नही लानी चाहिए। इससे तो कुछ दिनो तुम मायके जाकर रह लो, वह अच्छा है।"

कुछ रुककर भाभी के विषाद-भरे कोमल मुख पर पुन दृष्टि डालते हुए मैंने कहा—"सच कहता हू भाभी, मुझे यह एकदम असह्य लगता है कि तुम यहा रहो, इस घर मे, इस वातावरण मे। मेरी अन्तरात्मा इसे बिलकुल ही स्वीकार नही करती। लगता है जैसे तुम्हे यहा रहने देकर मैं कोई पाप कर रहा हू। लेकिन इस समस्या का वह हल नही है जो तुम सोचती हो, क्या हल होना चाहिए मैं जानता हू। किन्तु अभी हमे कुछ प्रतीक्षा करनी पडेगी।"

भाभी पूर्ववत् उदास और स्थिर थी, उस मुद्रा मे वे अतकित रूप मे कोमल और कमनीय लग रही थी।

"जी मे आता है भाभी," [मैंने एक नई उत्तेजना का अनुभव करते हुए कहा, "कि तुम्हे पकडकर यहा से दूर ले जाऊ, बहुत दूर, जहा से फिर कभी कोई छीनकर तुम्हे यहा न ला सके।"

मुझे एक विचित्र प्रकार का भावावेश हो रहा था, एक विचित्र वेदना, लग रहा था जाने कब से मैं भाभी से यह बात कहने की, उनपर अपना अन्तरग भाव प्रकट करने की, घडी खोजता रहा हू। प्रतीत हो रहा था मानो बरसो की प्रतीक्षा के बाद उस दिन एकान्त मे मुझे भाभी से यह कहने का अवसर मिला था। मानो वह बडा महत्वपूर्ण और अन्तिम अवसर था। मेरा स्वर अप्रत्याशित रूप से धीमा हो गया था और उसमे अजीब-सा कम्पन था। जान पडता था जैसे शीघ्र ही मेरी आखो से झर-झर अश्रु गिरने लगेंगे।

भाभी चुपचाप बैठी थी। उनके सलोने मुख पर विषाद की काली छाया राहु-सी पडी हुई थी। अनिर्वचनीय, वेदनाभरी सहानुभूति से मैं आकुल हो रहा था।

"भाभी!" मैंने धीमे, कापते स्वर मे पुकारा। वे पहले की तरह मौन और शान्त थी।

सहसा मैं उठकर खडा हो गया। भाभी की उदास स्थिरता जैसे मुझे बेध रही थी। उनके पार्श्व मे खडे होकर मैंने एक बार फिर धीरे से कहा, "भाभी!" और फिर दूसरे ही क्षण एक हाथ सिर पर और दूसरा ठोडी के नीचे डाल मैंने झुककर उन्हे चूम लिया।

उसी समय मजुल ने आखें खोलते हुए आवाज दी—"पानी।" भाभी धीरे-धीरे उठी, सुराही के पास गई और छोटे शीशे के गिलास मे पानी भरकर बच्ची के पास पहुच गई।

पानी पीकर मजुल फिर लेट गई। भाभी पखा लेकर बयार करने लगी।

बच्ची के सो जाने पर वे फिर सुराही के पास गई और बड़े गिलास में पानी भरकर मेरे पास ले आई।

"पियोगे ?" उन्होंने मुझसे पूछा।

मैंने गिलास लेकर खाली कर दिया।

वे फिर सुराही के पास पहुंची, गिलास भरा, और खड़े ही खड़े धीरे-धीरे पीने लगी।

वे मेरे पास आकर पहले की तरह चाय की टेबल के दूसरी ओर कुर्सी पर बैठ गई।

मैं कुछ सकोच महसूस कर रहा था और मेरे लिए भाभी के चेहरे की ओर देखना कठिन हो रहा था।

"तुम मुझसे प्रेम करते हो, देवर ?" भाभी ने सहसा शान्त, निर्विकार स्वर मे पूछा।

मैं चकित होकर भाभी की ओर देखने लगा। "क्या तुम्हें इसमे सन्देह है भाभी ?"

"तुम मुझसे शादी कर सकते थे, सच कहना ?"

"क्यो नही कर सकता था, लेकिन ऐसा सौभाग्य था कहा !"

"मैं तुमसे उम्र मे बड़ी हू देवर !"

"इससे क्या ? और तुम सिर्फ छह महीने ही तो बड़ी हो।"

"क्या अब भी शादी कर सकते हो—बिना किसी झिझक या परेशानी के ?"

मैं चुप रहा।

"क्यो, बोलते क्यो नही ?"

"सोच रहा हू, क्या यह मुमकिन है।"

"मुमकिन क्यो नही है। करने का साहस चाहिए।

"मुमकिन है तो जरूर कर सकता हू, किन्तु तरीका क्या है ?"

"मुझे भगाकर ले चलो," उन्होने सक्षेप मे कहा।

"भाभी !"

"क्यो, क्या डर लगता है ?"

"डर नही लगता है, लेकिन लेकिन अभी मैं स्वावलम्बी नही हू ।"

"जानती हू क्या स्वावलम्बी होने पर कर सकोगे ? मैं प्रतीक्षा करूगी ।"

याद नही मैंने भाभी को क्या उत्तर दिया, पर यह स्वीकारात्मक था। उस दिन मुझे लगा जैसे मैं यकायक वय सन्धि को पार करके बालिग बन गया हू ।

कुछ क्षण हम दोनो चुपचाप बैठे रहे । फिर एकाएक, मानो कुछ याद करके, भाभी उठी और अपने एक बॉक्स के पास पहुच गई । उसमे से उन्होने दो तकिये के गिलाफ और दो रूमाल निकाले और लाकर मेरे पास रख दिए ।

"यह क्या है भाभी ?"

"तकिये के गिलाफ है, पसन्द है ?"

"पसन्द तो होंगे ही, लेकिन मेरे पास तो गिलाफ है, पहले दिए थे न ?"

"वे तो अब फट गए होंगे । यही सोचकर मैंने ये बना लिए ।"

"और ये रूमाल ?"

"ये भी तुम्हारे लिए बनाए है, पसन्द हो तो ले जाओ । इस बहाने ही कभी-कभी भाभी की याद हो जाया करेगी ।"

मैं चुप ही रहा । कुछ देर मे कहा—"तुम समझती हो कि तुम्हे मैं भूल भी जाऊगा, भाभी ?"

भाभी ने कोई उत्तर नही दिया । उनकी उदास दृष्टि फिर धरती का स्पर्श कर रही थी ।

काश कि आगे की कहानी मुझे न कहनी पडती, काश कि उसका रूप वह न बना होता जो बन गया! लेकिन मैं जानता हू कि उसे कहे बिना मैं रह नही सकूगा, और न कल ही पा सकूगा। न जाने कौन-सी शक्ति मुझे प्रेरणा दे रही है कि अपने कृत्यो के इस खाते को पूरे विवरण से भरकर आपके सामने पेश करू।

भाभी के वे गिलाफ, जिनके एक-एक कोने पर फूलो के अलावा 'स्वीट ड्रीम्स' और 'गुड नाइट' अकित है और वे रूमाल, जिनपर थोडे से शिल्प के साथ मेरे नाम के अक्षर भी कढे हैं, आज भी मेरे पास मौजूद हैं। पिछले कई बरस से वे मेरे एक बॉक्स के तले मे पडे हुए हैं। मैं उन्हे निकालते हुए डरता हू, फिर भी उन्हे नष्ट करने या किसीको दे डालने का साहस नही कर पाता।

ये गिलाफ और रूमाल मैंने उसी दिन भाभी से नही ले लिए थे। कहा था कि अगले दिन जब मेरे घर आओ तो लेती आना। भाभी ने मजूर कर लिया था।

पिछले कई अवसरो की भाति उस दिन भी मेरे चलते समय भाभी जीने तक मेरे साथ आई थी। जीने की पहली सीढी पर मैं ठिठककर खडा हो रहा था। भाभी उदास थी, फिर सहसा उनकी आखो मे आसू भर

आए थे। कहा था—"अब कब भेंट होगी, देवर ?"

मैंने उत्तर दिया था—"जल्दी ही होगी भाभी, तुम चिन्ता न करना। और हां, यदि मैं पत्र लिखूं तो ?"

"ना भइया, तुम पत्र न लिखना, कहीं कोई देख लेगा तो मुफ्त में झगडा खडा हो जाएगा।"

"लेकिन तुम तो पत्र लिख सकती हो भाभी, तुम जरूर लिखना।"

भाभी ने स्वीकृति दी थी। बाद में उन्होंने कई पत्र लिखे भी।

दूसरे दिन भाभी हमारे घर आई थी। मैं चाहता था कि उनसे थोडी देर भी एकान्त में बात करूं, पर सुषमा के कारण वैसा अवसर नहीं पा सका। सुषमा भाभी से बहुत दिनों बाद मिली थी और उन्हें छोडना ही नहीं चाहती थी। इस बीच में मुझे बाहर-भीतर घूमते पाकर, एक बार भाभी बडे मधुर भाव से मुस्कराई थी। वह मुस्कराहट एकसाथ ही रहस्यमय आत्मीयता, अकलुष उल्लास और घनिष्ठ आपसी जानकारी की द्योतक थी।

बिजनौर से कुछ दिनों के लिए माताजी और मैं हरिद्वार चले गए। वहां हम प्राय पन्द्रह दिन ठहरे। जुलाई का दूसरा सप्ताह शुरू होते होते हम लखनऊ आ गए।

घर पहुंचकर जो बात मैंने सबसे पहले लक्ष्य की, वह थी पिताजी का परिवर्तित मनोभाव। वे अब मुझसे रुष्ट नहीं जान पडते थे। इसके विप-रीत उन्होंने मेरे लौटने पर प्रसन्नता प्रकट की। अतीत को भूलकर अब वे पुन मेरे भविष्य के लिए योजनाएं बनाने लगे। उनकी सहमति से मैंने एम० एस-सी० गणित के साथ दो का पहला वर्ष भी 'ज्वाइन' कर लिया। साथ ही पिताजी ने कहा—"तुम्हें प्रतियोगिता की तैयारी का भी ध्यान रखना है, इसलिए कुछ 'जनरल' (सामान्य ज्ञान की) चीजें भी पढ़ते रहो। परिश्रम से क्या नहीं हो सकता, और तुममें बुद्धि की कमी तो है नहीं। यह न समझो कि अभी कुछ बिगड गया है।"

मैंने पिताजी को आश्वासन दिया कि परिश्रम करने में मैं कोई कसर

नही उठा रखूगा। मुझे यह जानकर सतोष हुआ कि पिताजी को मेरी बौद्धिक क्षमता मे अविश्वास नही है।

लगभग दो सप्ताह बाद भाभी का पत्र मिला

" देवरजी,

तुम आए और चले गए, मानो जीवन के अधेरे मे क्षण-भर को बिजली कौंध गई। सहज ही विश्वास नही होता कि यह सच था, कि सचमुच किसीसे कुछ सम्बन्ध जुडा था। कभी-कभी लगता है जैसे मैंने कोई सपना देखा था, जिसके सत्य उतरने की कोई आशा या सम्भावना नही है।

"हा देवर, मुझे यही प्रतीत होता है। शादी के दिनो मे ही मेरा तुमसे परिचय हुआ था, तभी जाना कि तुमसे मेरा एक सामाजिक सम्बन्ध है। पता नही कब वह सम्बन्ध अपनी सीमाओ का अतिक्रमण करके गहरे निजीपन मे बदल गया। लेकिन तुम निकल पडे बाहर, भाभी की दृष्टि से सैकडो मील दूर, और तब से लगातार दूर ही रहे हो। अपने अपेक्षाकृत अजान और व्यस्त छात्र-जीवन मे पता नही तुमने कब कितना महसूस किया, परन्तु उसने, जो जीवन की चोटो से असमय ही वयस्क बन गई थी, तुम्हे सुखद पलायन का सबल बनाकर सहज ही अपने कल्पना के सपनो मे प्रतिष्ठित कर डाला। आज भी तुम मेरे लिए एक मोहक कल्पना-मात्र हो, एक मधुर स्वप्न, आशा की एक सुदूर दीखने वाली मजिल जिस तक पहुचने का कोई स्पष्ट रास्ता नही है।

' और इस बार तुम एकाएक आ पहुचे, मेरी बीहड, उजाड जिन्दगी के लिए नये वसन्त का सन्देश लेकर, मेरी हृदय की मरुभूमि के लिए नई सुधा का सिञ्चन लेकर। समझ नही पा रही हू कि कैसे तुम्हारे प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करू।

" मै तुमसे उम्र मे कुछ बडी हू। व्यवहार की दुनिया में रह चुकने के कारण इसके उतार-चढाव को तुम्हारी अपेक्षा कुछ ज्यादा समझती हू। तुम्हारे प्रेम और उदारता का हृदय से अभिनन्दन करते हुए भी इसीलिए

मैं सन्दिग्ध भाव से पूछती हू—क्या हमारे स्वप्न और योजनाए उचित और सम्भाव्य हैं ? क्या यह उचित है कि मेरे कारण तुम समूचे समाज का रोष सिर पर लेकर जीवनव्यापी सघर्ष और अशान्ति को निमन्त्रण दो ? क्या यह उचित होगा कि अपने सुख के लिए मैं तुम्हे वैसा कदम उठाने मे सहयोग दू ?

"देवर, मैं अपने लिए बिल्कुल नही डरती। जीवन मे नैराश्य के सिवाय जिसने कुछ जाना ही नही, जो सब ओर से वचित और प्रताडित है, उसे किसी भी परिवर्तन से लाभ ही होगा। मैं विद्रोह की सम्भावना से नही घबराती, और पाप-पुण्य की प्रचलित धारणाओ की भी कायल नही हू। दूसरे जन्म मे विश्वास न रखते हुए मैं मानती हू कि यह जीवन बरबाद करने या होने के लिए नही है। लेकिन यह तो सिर्फ मेरे जीवन का प्रश्न नही है, उसके साथ एक ऐसे व्यक्तित्व के भविष्य का प्रश्न जुडा है, जिसमे मेरा बेहिसाब गहरा ममत्व है। सोचती हू, मेरे लिए जो तुम इतनी बडी जोखिम उठाओगे उसका प्रतिकार क्या कभी मैं कर सकूगी ? मेरे जीवन का दुर्भाग्य तुम्हारे सौभाग्य को आच्छादित करे, इसे देखने से पहले क्या इस अर्थहीन, महत्त्वशून्य प्राणो के सूत्र को छिन्न कर देना ही उचित न होगा ?

तुम्हारी भाभी,
सुमित्रा"

भाभी का पत्र मैने ध्यान से पढा और कई बार पढा। कह नही सकता उस समय मैं उसे कहा तक समझ सका, पर यह याद है कि पत्र मुझे बहुत अच्छा लगा था। उस समय भी मुझे यह स्पष्ट अनुभव हुआ था कि भाभी बहुत समझदार है, और वे मुझे बहुत प्यार करती है। और मैंने सोचा था—भाभी समझती है मैं यह सब कुछ सिर्फ उन्ही के लिए करना चाहता हू, और मेरा अपना कोई स्वार्थ नही है। जैसे मैं भाभी को पाना ही नही चाहता। और यह दुनिया के विरोध की बात—भाभी मुझे कितना कमज़ोर समझती है! जो युवक ससार मे इतना भी न कर सके,

इतना भी विद्रोही न बन सके, उसका जीवन भी कोई जीवन है !

पत्र का उत्तर देने की मनाही थी, मैंने उसे सभालकर रख लिया। मेरी सदाशयता और सदिच्छाओ के ज्वलन्त प्रमाण के रूप मे वह पत्र आज भी मेरे पास सुरक्षित है।

आज जब मैं उस पत्र को पढता हू तो अन्तर मे अजीब-सी कसक और पीडा होती है, और एक विचित्र हाहाकार का स्वर प्राणो मे गूज उठता है। सोचता हू—पत्र के माध्यम से अपनी जिस ऊची मनस्विता, उदार सहृदयता और सूक्ष्म-कोमल सवेदना का परिचय भाभी ने दिया था उनकी मैंने क्या कद्र की ? उनके अतर्कित, निर्मल स्नेह का मैंने क्या प्रतिदान दिया ? उनकी निगूढ, मर्मान्तक व्यथा का मैंने क्या प्रतिकार किया ? दैव और समाज के सम्मिलित षड्यन्त्र ने उन्हे जिन अभिशप्त परिस्थितियो मे डाल दिया था, उनसे उनका परित्राण करने के लिए मैंने क्या प्रयत्न किया ? जिस नारी ने मुझसे पूर्ण विश्वास करके अपना सर्वस्व अर्पण करना चाहा था, उसकी रक्षा और क्षेम के लिए मैंने कितना त्याग और श्रम किया ?

उस पत्र को पढकर आज मेरे मन मे यह निरर्थक मोह और ममत्व क्यो उमडता है ? क्यो मुझे आज भाभी के ख्याल से, उनके स्नेहशील, प्रखर व्यक्तित्व की स्मृति से, इतना कष्ट होता है ? अब मेरे यह सोचने से क्या लाभ है कि मैंने भाभी को खोया ही नही, नष्ट भी कर दिया है।

लखनऊ एव विश्वविद्यालय के बहुमुखी जीवन मे, अध्ययन की व्यस्तता मे, और नई आशाओ व आकाक्षाओ के आलोडन मे मैं अपने को, और वर्तमान से असम्बद्ध स्मृतियो को, क्रमश खोता गया। बाद मे भाभी के दो पत्र और मिले। पहले पत्र की भाति ही उन्हे पढकर मैंने रख लिया, शायद बिना उतनी तीव्र प्रतिक्रिया के, जैसी प्रथम बार हुई थी।

धीरे-धीरे पूरा वर्ष बीत गया। गणित के साथ ही मैं नॉ मे हाजिरी देता था, और, पिताजी के अनुरोध से अग्रेजी साहित्य तथा सामान्य ज्ञान

की भी पुस्तकें पढने या उलटने का प्रयत्न करता था। इसके बावजूद मेरी परीक्षाओं का जो फल निकला वह न तो खराब ही कहा जा सकता था, न अप्रत्याशित। लॉ में मेरे फर्स्ट क्लास नम्बर थे लेकिन गणित में सिर्फ तीन अंकों से प्रथम श्रेणी रह गई। ये तीन अंक कम रह जाने का भी एक विशेष हेतु था। परीक्षा के मध्य में एक दिन मुझे हल्का-सा ज्वर हो गया था, और एक पर्चा टेम्परेचर की हालत में देना पड़ा था। उसके बाद दो दिन का अन्तराल था, जिसमें मैं ठीक हो गया। परीक्षा भवन में ज्वर होने की बात मैंने पिताजी से नहीं कही, उन्होंने यही समझा कि पर्चा समाप्त करने के बाद यकायक, शायद बहुत दिनों की थकान के कारण मेरी तबीयत खराब हो गई थी।

परीक्षा-फलों की पर्यालोचना के मौके पर मैंने पिताजी से कहा—"तीन नम्बर की कोई बात नहीं है, अगले वर्ष में पूरे हो जाएंगे। एम० एस-सी० में जरूर ही अच्छा डिवीजन लाना है।"

पिताजी असन्तुष्ट दिखाई नहीं दिये, किन्तु उन्होंने किसी तरह की प्रसन्नता भी प्रकट नहीं की। पूछा—"अगली जनवरी में आई० सी० एस० की परीक्षा में बैठ रहे हो न ?"

"सो तो बैठना ही है," मैंने उत्तर दिया।

लेकिन मैं जानता था कि लॉ और गणित दोनों का कोर्स पढ़ते हुए प्रतियोगिता की तैयारी सम्भव नहीं होगी। पिताजी और मैं दोनों ही समझते थे कि उस वर्ष आई० सी० एस० में बैठना उस परीक्षा से परि-परिचय-मात्र के लिए होगा। किन्तु पिताजी शायद और कुछ भी समझते थे।

एक दिन मैंने पिताजी और माताजी को अपने विवाह के सम्बन्ध में चर्चा करते सुना। माताजी की तो बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि मेरा विवाह जल्द से जल्द हो जाए किन्तु पिताजी टालने का प्रयत्न करते थे। वे कहा करते, "जब तक लड़का अपने पैरों पर खड़ा होने लायक न बन जाए तब तक उसकी शादी करना ठीक नहीं।" इसपर माताजी

कहती, "क्या एक बहू का खर्च तुमसे बरदाश्त नही होगा ? अकेला तो मेरा लडका है, कोई लडकी भी तो नही, जिसकी फिक्र हो।"

कहकर माताजी कभी-कभी रुष्ट हो जाती, तब पिताजी कहते, "हा हा, मैं क्या चाहता नही कि राजन की शादी करू, लेकिन कोई अच्छी लडकी दीखे तब न।"

इसपर माताजी बिरादरी की दो-चार लडकियो का उल्लेख करने लगती। अन्त मे पिताजी को यह कहकर टालना पडता कि "सिर्फ लडकी का अच्छा होना ही काफी नही है, खानदान भी तो कुछ होना चाहिए।" खानदान के कुछ होने मे उनका तात्पर्य था, समृद्ध परिवार होना, जो लडकी के साथ बढिया दहेज भी दे सके।

मेरे विवाह की चर्चा मे स्वय मुझसे कुछ पूछना पिताजी उचित नही समझते थे। इस सम्बन्ध मे माताजी कभी-कभी मेरी सम्मति जानने का प्रयत्न भी करती, शायद इस आशा से कि मुझे साथ लेकर वे पिताजी के विरुद्ध अपना पक्ष प्रबल बना सकेगी।

जब हम बिजनौर मे थे तो माताजी अक्सर भाभी का उल्लेख करके कहती थी, "मैं अपने राजन के लिए ऐसी ही लडकी लूगी, एकदम लक्ष्मी है।"

एक दिन पिताजी ने मुझसे पूछा कि बी० एस-सी० मे मेरे साथ कौन-कौन लडकिया पढती थी। मैं सुनकर चकित हो गया, कही पिताजी को यह पता तो नही लग गया कि मैं अख्तर के व्यक्तित्व मे दिलचस्पी रखता था। मैंने सकोच उनकी जिज्ञासा के अनुरूप उन्हे लडकियो के नाम, रूप स्टेटस आदि का परिचय दिया। इस परिचय मे मैंने अख्तर की विशेष प्रशसा नही की, इस भय से कि कही पिताजी मेरी उससे सम्बन्धित रुचि को न ताड जाए। इसके विपरीत मैंने कान्ता की सुन्दरता पर कुछ अधिक गौरव दिया और पिताजी के मन पर अकित कर दिया कि उन क्लास की लडकियो मे वही सर्वश्रेष्ठ थी।

मेरी बाते सुनकर पिताजी अर्थपूर्ण ढग से मुस्कराये।

दशहरे की छुट्टियों मे एक दिन पिताजी ने मुझसे पूछा—"प्रतियोगिता की तैयारी कैसी चल रही है ?"

"कुछ तो पढा है, लेकिन डबल कोर्स के कारण समय नही मिलता। इस वर्ष लॉ का क्लास ज्वाइन न करता तो ठीक होता।"

"उचित वही था। सिर्फ यही यूनिवर्सिटी है जो दो वर्ष मे ला और एम० ए० साथ-साथ करने देती है। यह नियम ठीक नही है। तो इस वर्ष तैयारी अधकचरी ही रहेगी।"

"हा पिताजी !"

"और अगले वर्ष भी क्या ठिकाना है, आई० सी० एस० की प्रतियोगिता बहुत कडी है।"

"जी हा। पिताजी, मुझे तो लॉ बहुत अच्छा लगता है, प्रैक्टिस करू तो कैसा रहेगा ?"

"प्रैक्टिस भी तो बडी अनिश्चित चीज़ है, इस पेशे मे बडी भीड हो गई है।"

"सो तो है, फिर भी "

"दूसरे," पिताजी ने बात काटते हुए कहा, "अब कांग्रेस की सरकार बन गई है, ज़मींदारी खत्म करने की चर्चा जोरो मे हो रही है। ज़मींदारी उठ जाने पर वकीलो का काम और भी कम हो जाएगा।"

पिताजी की दूरदर्शिता की मैं मन ही मन दाद दिये बिना न रह सका, यद्यपि मेरी बडी इच्छा थी कि लॉ के प्रोफेशन म प्रविष्ट होऊ।

"मै सोच रहा हू," पिताजी ने कुछ क्षण रुककर कहा, "अगर यो ही तुम्हे कोई अच्छी नौकरी मिलने का मौका लग जाए तो कैसा।"

मैं मौन रहा, जिसका एक अर्थ स्वीकृति हो सकता था। यो भी, व्यावहारिक दृष्टि मे देखने पर, पिताजी के प्रस्ताव म कोई आपत्तिजनक बात तो थी नहीं।

"क्या राय है ?" पिताजी मुझे टटोलने के लिए पूछा।

"इसमे राय का सवाल ही नही है, लेकिन प्रश्न है कि ऐसा मार्ग

मिल जाए। दूसरे, वेतन चार सौ से कम हर्गिज़ नही होना चाहिए।"

"हा-हा, सो तो ठीक है," पिताजी ने कहा, "इससे कम मे एक इज्जतदार आदमी की गुज़र हो ही नही सकती, और वह भी लखनऊ मे रहकर।"

"हा पिताजी," मैंने कृतज्ञता के भाव से कहा।

मैं सचमुच कृतज्ञ था, और पिताजी की दीर्घ-दृष्टि के प्रति आश्वस्त तथा आदरयुक्त भी। साथ ही मैं यह सोचकर लज्जित भी हुआ कि कभी-कभी मैं पिताजी को गलत समझता रहा हू। यदि कभी वे मेरी मागें पूरी नही कर सके हैं और मुझे खर्चीला बनने के विरुद्ध चेतावनी भी देते रहे हैं, तो इसलिए नही कि वे मेरी जरूरतो को अनुचित समझते हैं, बल्कि इसलिए कि उनकी आमदनी सीमित है और ढलती हुई अवस्था मे उन्हे कुछ बचाकर रखने की भी चिन्ता है। फिर वे बचाकर किसी गैर के लिए तो नही रखते, उनका सब कुछ मेरे ही लिए तो है।

और मैंने सोचा, यदि इस समय मैं तीन-चार सौ रुपये भी अलग से कमाने लगू तो हमारी गरीबी का अन्त हो जाए। तब मैं अच्छे से अच्छे तथा भद्रजनो की तरह कपडे पहन सकू।

मेरे दुर्भाग्य या सौभाग्य से शौकत ने गणित का विषय लिया था, और मुझे सदैव दीखता रहता था। अख्तर और सुधीर ने फिजिक्स ली थी। कभी-कभी डॉक्टर भल्ला से भेंट करने को जाने पर उनके दर्शन भी हो जाते थे। इन तीनो मे से किसीने भी लॉ का कोर्स नही लिया था। भद्र वर्ग के प्रतीक के रूप मे ये लोग बहुत कुछ मेरे आदर्श थे।

एक दिन मुझे एकान्त में बिठाकर पिताजी ने अपनी यह सम्पूर्ण योजना समझाई जो उन्होंने मेरे भविष्य को लेकर बनाई थी।

बात यह थी कि पिताजी को यह विश्वास नहीं था कि मैं आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में सफल हो सकूंगा। बड़े से बड़ा आशावादी भी इस सम्बन्ध में निश्चिन्त नहीं हो सकता था। देश के सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्क उस प्रतियोगिता में भाग लेते हैं, और जगहें थोड़ी ही होती हैं। क्या जरूरी है कि उन चन्द भाग्यवानों में, जो उसमें चुने जाएं, मेरा नाम आ ही जाए! दूसरे, आई० सी० एस० के इण्टरव्यू में मुख्यतः उम्मीदवार की दो विशेषताओं पर ध्यान दिया जाता है—एक उसका पिछला बौद्धिक 'कैरियर' और दूसरे उसके सम्बन्ध या 'कनेक्शन्स'। इन दोनों ही दृष्टियों से मुझे आशान्वित होने का कारण नहीं था।

"तुम्हारा सबसे मजबूत विषय गणित था, उसमें भी फर्स्ट क्लास नहीं आया। मैं यह नहीं कहता कि इस वर्ष तुम पिछले साल की कमी पूरी नहीं कर लोगे, लेकिन आई० सी० एस० की परीक्षा में फर्स्ट क्लास नम्बर कोई खास महत्त्व नहीं रखते। वहां तो फर्स्ट क्लास वालों में भी एक से एक दिमागदार विद्यार्थी रहते हैं। इसलिए..."

"पिताजी, यों भी मेरे लिए उतना ही अच्छा विषय है जितना कि

गणित," मैंने प्रतिवाद के स्वर मे कहा, "फिर यह तो सोचिए कि पिछले वर्ष से मुझे कितनी चीजें पढनी पडी हैं।"

"हा, हा, मैं यह थोडे ही कह रहा हू कि इसमे तुम्हारा कोई दोष था, मैं जानता हू कि तुम अच्छे दिमाग के नवयुवक हो, लेकिन फिर भी प्रतियोगिता प्रतियोगिता है, उसकी सफलता के बारे मे निश्चयपूर्वक तो कोई दावा किया ही नही जा सकता—या किया जा सकता है ? मिस्टर तिवारी के लडके को ही देख लो, कितना शानदार यूनिवर्सिटी 'कैरियर' था, फिर भी आई० सी० एस० मे नही आ सका। और उसने पूरे तीन 'चान्स' लिये।"

मिस्टर तिवारी पिताजी के एक परिचित एडवोकेट थे, उनके पुत्र की इस दु खद विफलता का वे इधर कई वार उल्लेख कर चुके थे।

"सो तो है, पिताजी, लॉ मैंने यही सोचकर पढा है। यदि प्रतियोगिता मे सफलता न मिली तो "

"प्रैक्टिस करोगे, यही न ? आखिर मे वह रास्ता तो खुला ही है। लेकिन इसका क्या ठिकाना है कि प्रैक्टिस अच्छी चल ही जाएगी। लॉ के 'प्रोफेशन' मे सिर्फ तेज दिमाग से ही काम नही चल जाता।"

पिताजी की इस तरह की वातचीत कभी-कभी मुझे खल जाती थी। अपने प्रति उनका इतना अविश्वास मेरे स्वाभिमान को चोट पहुचाता था। फिर भी मैं जानता था कि उनकी अनुभवी व्यवहार-बुद्धि की ये कल्पनाए निराधार नही हैं। वस्तुत मुझे स्वय भी यह आस्था नही थी कि मैं आई० सी० एस० की परीक्षा मे सफल हो ही जाऊगा। उन दिनो की आई० सी० एस० की प्रतियोगिता आज के आई० ए० एस० से कही कठिन होती थी।

मैं प्रतीक्षा करने लगा कि पिताजी आगे क्या कहना चाहते हैं। मैं जानता था कि उनका तार्किक मस्तिष्क उन्हे कभी व्यर्थ की भूमिका बाधने की प्रेरणा नही देता।

धीरे-धीरे पिताजी असली मतलब पर आ गए। सीतापुर के एक

बड़े प्रभावशाली एम० एल० सी० साहब अपनी पुत्री का विवाह मुझसे करना चाहते थे। उन्होंने यह भी आश्वासन दिया था कि वे शीघ्र ही मुझे एक अच्छी नौकरी दिलवा सकेंगे। "जहां तक लड़की का सवाल है," पिताजी ने कहा, "वह यूनिवर्सिटी की ग्रेजुएट है, देखने-भालने में भी अच्छी है। चाहो तो तुम खुद जाकर उसे देख सकते हो।"

"इस सम्बन्ध में अच्छी तरह सोच समझ लो," पिताजी ने कुछ क्षण रुककर कहा, "रायसाहब (यह सीतापुर के एम० एल० सी० महोदय का नामांश था, टाइटिल नहीं, जैसा कि मैंने बाद में जाना) चाहते हैं कि शादी इसी साल हो जाए।"

"लेकिन पिताजी, इस वर्ष मुझे कई परीक्षाएं जो देनी हैं, शादी के बखेड़े में समय की बड़ी हानि हो जाएगी।"

"इसी साल से मतलब यह नहीं कि तुम्हारी वार्षिक परीक्षा से पहले शादी हो जाए, शादी परीक्षा के बाद ही होगी। इतनी बात रायसाहब भी समझते हैं।"

मैं खामोश हो गया। इतने शीघ्र विवाह होने की सम्भावना से मैं सचमुच ही घबरा गया था।

पिताजी मुझसे बहुत स्नेह करते थे। मैं इस बात को जानता था, और, कभी-कभी मन में उनके विरुद्ध भाव उठने के बावजूद, इसके लिए उनके प्रति कृतज्ञता महसूस करता था। अब सोचता हूं कि पिताजी का इतना उत्कट स्नेह और मेरी कृतज्ञता-भावना ये दोनों ही स्वस्थ सीमा के भीतर नहीं थे। मनुष्य कल्पनाशील प्राणी है, यह शिकायत की नहीं, सौभाग्य की बात है। कल्पना द्वारा वह यथार्थ की यान्त्रिक कठोरता को मृदुल बनाता है, और उसकी जड़ नियमशीलता के बीच अपनी स्वाधीनता की प्रतिष्ठा करता है। प्रकृति शक्तिशालिनी है, उसके आकाश-मण्डल में सूर्य तथा चन्द्रमा हैं, और असंख्य सितारे हैं, पर ये सभी अखण्डनीय नियमों से बंधे हैं। मनुष्य का तुच्छ दीपक, जो समय-असमय कभी भी जलाया जा सकता है, उसकी क्षुद्रता का ही नहीं, शक्ति और

स्वतन्त्रता का भी प्रतीक है। दीपक मनुष्य की कल्पना की सृष्टि है।

किन्तु कल्पना का दुरुपयोग भी सम्भव है। अपनी कल्पना द्वारा दूसरो के जीवन को सीमित बनाने और बाध देने की चेष्टा कल्पना का अनाचार है। कल्पना असीमित है, इसलिए मनुष्य की शक्ति भी असीमित है। स्वय मनुष्य को सीमा मे, अखण्ड मर्यादा मे, बाधने की चेष्टा करने वाली कल्पना मानो अपने ही प्रति विद्रोही है।

महत्त्वाकाक्षी माता-पिता अपने बच्चो के भविष्य को लेकर कुछ कल्पनाए करते है, उन कल्पनाओ को वे सही ही नही, चरम भी समझते है। स्नेही माता-पिता अपनी सन्तति के निर्माण के सपने उतनी ही गम्भीरता से देखते है जैसे कि महापुरुष इतिहास के निर्माण के। वर्तमान की कल्पनाओ से भविष्य को पूर्णतया बाध लेने की कामना रखने वाला मनुष्य अनागत की नूतनता और सृजन-क्षमता दोनो के प्रति सन्देहयुक्त होता है।

मेरे पिताजी मेरे लिए स्नेहशील और महत्त्वाकाक्षी दोनों ही थे, इसलिए, मेरे भविष्य मे आस्था न रखते हुए, वे उसकी सम्पूर्ण रूपरेखा खुद ही तैयार कर देना चाहते थे।

कुछ दिनो बाद पिताजी मेरे विवाह को लेकर इस तरह बातचीत करने लगे जैसे वह एक तय बात हो। उन्होंने माताजी से सलाह की और चाचाजी को चिट्ठी लिखी, यह निश्चय करने के लिए कि कन्या को देखने अर्थात् सम्बन्ध पक्का करने कब जाया जाए। कन्या-निरीक्षण के लिए मुझे भी जाना था, किन्तु जान पडता था कि वह एक गौण या आनुषगिक बात थी। पिताजी के वार्तालाप मे इस आशका का आभास तक न था कि मैं लडकी को नापसन्द भी कर सकता हू। सारा कार्यक्रम इस तरह बनाया जा रहा था जैसे सीतापुर जाने का एक सुनिश्चित अर्थ और प्रयोजन हो, यहा तक कि भावी वधू के लिए कुछ गहनो के निर्माण का आर्डर भी दे दिया गया।

नवम्बर के तीसरे सप्ताह मे हम लोग सीतापुर गए। पिताजी तथा

माताजी के अतिरिक्त चाचाजी भी साथ थे, इस अवसर के लिए उन्हें खास तौर से बुलाया गया था। मेरे दिल में अजीब तरह की धड़कन हो रही थी।

स्टेशन पर रायसाहब की कार हमें लेने आई थी। मेरे दोनों अभिभावक रायसाहब की समृद्धि देखकर चकित थे, उनकी खातिर-तवाजा से उतने ही सन्तुष्ट। उनकी गतिविधि और आपस की बातचीत में कहीं किसी प्रकार की दुविधा का संकेत नहीं था। उनकी यह स्थिति देखते हुए मैं अपने भविष्य और कर्त्तव्य दोनों के प्रति बड़ा अनिश्चित अनुभव कर रहा था। मन ही मन मानो मैं किसी अज्ञात शक्ति से प्रार्थना कर रहा था कि कोई ऐसी बात न हो जिससे पिताजी तथा चाचाजी के उस सहज उल्लास और आस्था को ठेस लगे। लड़की को देखने से पहले ही मैं उसे पसन्द कर लेने का पिचहत्तर प्रतिशत संकल्प कर चुका था।

साँझ को चाय के वक्त मुझे यह मालूम हो गया कि मेरी होने वाली वधू और कोई नहीं, मेरी भूतपूर्व सहपाठिन कान्ता थी।

बी० एन-पी० के वनाम मे मैंने कभी कान्ता की ओर विशेष ध्यान नही दिया, इसका कारण यह नही था कि वह असुन्दर थी, या वेशभूषा मे साधारण थी। कारण यह था कि उसमे प्रखर व्यक्तित्व और बौद्धिक दीप्ति का अभाव था। इन दृष्टियो से वह एकदम साधारण या औसत कोटि की लडकी जान पडती थी। वह आकर्षणहीन नही थी, पर उसका सारा आकर्षण मानो परम्परागत शालीनता और भौतिक गठन मे परिसमाप्त हो जाता था। इसके विपरीत अख्तर कुछ दृष्टियो से असाधारण थी, इसीलिए वह मुझे आकृष्ट करती थी।

कान्ता के व्यक्तित्व की इन कमियो को समझने योग्य ढग से पिताजी के सामने नही रखा जा सकता था। सीतापुर मे, स्वय रायसाहब की कोठी मे तो, यह और भी कठिन था। इसके अलावा, पिछले एक अवसर पर मैं खुद पिताजी से कान्ता की प्रशसा कर चुका था। इसलिए मेरे लिए अब यह कहना कि कुछ रहस्यमय कारणो से मैं कान्ता से विवाह नही करना चाहता उचित और सम्भव नही था। इसके अतिरिक्त रायसाहब की ऊँची स्थिति और दबदबा भी कम महत्त्वपूर्ण हेतु नही थे। इस परिस्थिति की अवहेलना नही की जा सकती थी कि कान्ता एक प्रतिष्ठित और समृद्ध कौन्सिल के सदस्य की लडकी है।

पिता की सामाजिक स्थिति मानो कान्ता के व्यक्तित्व को एक अदृश्य कवच और महत्त्व से मंडित कर रही थी। इनकी उपेक्षा करते हुए कान्ता के विरुद्ध कोई सम्मति प्रकट करना हमारे पक्ष के लोगों के लिए सहज साध्य न था।

इसलिए जब माताजी तथा चाचाजी ने लड़की के बारे में मेरी राय जाननी चाही तो मैं उत्साहशून्य मौन के सिवा कोई उत्तर नहीं दे सका। इस मौन तथा मेरे साथ की हुई पिछली चर्चा के बल पर पिताजी ने रायसाहब (अर्थात् बाबू कल्याणराय) को सम्बन्ध तय होने का संकेत दे दिया। माताजी ने कान्ता को दो-एक गहने पहनाकर और रायसाहब ने मुझे तथा समधिन-समधियों को लगभग पांच सौ रुपये भेंट करके उस सम्बन्ध को एक पक्के सौदे का रूप दे दिया।

यह नहीं कि उक्त सम्बन्ध की प्रारम्भिक चर्चा से लेकर उसके स्थिर किए जाने तक मुझे सुमित्रा भाभी का स्मरण नहीं हुआ, पर मैं बहुत पहले से यह सोचने लगा था कि भाभी की सहमति होते हुए भी उस तरह का कदम उठाना व्यवहार्य नहीं है। कानून के अध्ययन ने मुझे इस सम्बन्ध में और भी सतर्क बना दिया था। स्वयं भाभी ने यही बात अपने पत्र में लिखकर भेजी थी और उनका लिखना ठीक ही था। जो बात एकदम अयुक्त और असम्भव थी, उसे लेकर बहुत-सी चिन्ता करना व्यर्थ था। इस मामले में भाभी और मैं दोनों ही समान रूप से लाचार थे।

सीतापुर से लौटकर पिताजी कई दिन तक रायसाहब के स्वभाव, ऐश्वर्य और महत्त्व की ही चर्चा करते रहे। स्पष्ट ही वे बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट थे। यह महसूस कर रहे थे कि वे अब शीघ्र ही मेरे भविष्य की ओर से निश्चिन्त हो सकेंगे। "रायसाहब ने कहा है," उन्होंने माताजी को तथा मुझे भी सुनाते हुए कहा, "कि वे बहुत जल्द राजन को किसी अच्छी नौकरी पर लगा देंगे।" माताजी के यह पूछने पर कि नौकरी क्या और कितने की होगी, उन्होंने कहा, "यह सब तफसीला

तो रायसाहब ने नही बतलाई, कुछ नही तो 'ऑफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी' ही बनवा देंगे, वेतन तीन सौ से पाच सौ तक हो सकता है।"

तीन सौ से पाच सौ तक—मैंने इस शब्द-समूह को ध्यान से सुना, और उसने मेरी कल्पना को स्पर्श किया। रायसाहब की शक्ति और महत्ता का जो विवरण मुझे दिया गया था उससे मैंने अनुमान किया कि विशेष प्रयत्न करने पर वे मुझे अवश्य ही पाच सौ की नौकरी दिला सकेंगे। उस समय यह सख्या मुझे बहुत बडी जान पडी थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि किस प्रकार बहुत दिनो तक सम्भावित नौकरी और वेतन को लेकर मैं तरह-तरह के मनसूबे बाधता रहा था। मेरे मस्तिष्क मे एक सुन्दर बगला बनाने का विचार भी उन्ही दिनो उत्पन्न हुआ था।

यह नही कि मैं कान्ता के बारे मे सोचता ही न था, किन्तु उस सोचने मे भी समृद्ध और सन्तुष्ट जीवनचर्या की कल्पना ही प्रधान होती। मुझे लगने लगा था मानो मेरे आगे अब कोई अडचन या सघर्ष नही है, सिर्फ सुख और ऐश्वर्य की ही सभावनाए हैं। और चूकि ये सम्भावनाए मेरे नये सम्बन्ध पर निर्भर थी, इसलिए वह सम्बन्ध मुझे एक अकल्पित लाभ और सौभाग्य के रूप मे दिखाई देने लगा। फिर कान्ता काफी सुरूप भी है—मैं सोचता—उसके साथ समाज मे निस्सकोच घूमा जा सकता है। और वह रायसाहब की लडकी है, यह भी एक महत्त्व की बात है। थोडा-सा प्रयत्न करने पर वह अख्तर की भाति 'अप-टु-डेट' और मॉडर्न दीखने लग सकती है।

को खबर तक नही की ! और जब 'भाभी' को देखने गया तो भी अकेला, उसे साथ नही लेता गया, जैसे वह मेरी कीमती दुलहिन का कुछ छुटा लेती ! यह तो निश्चित ही था कि मेरे पास 'भाभी' के दस-पाच फोटो होगे, उन मे से एक यदि मैंने लौटनी डाक से सुषमा के पास नही भेज दिया तो वह जिन्दगी-भर मुझसे बात नही करेगी। पत्र मे चाचाजी की प्रसन्नता का भी उल्लेख था।

पत्र मुझे बडा प्रिय लगा था। कान्ता का और मेरा सम्बन्ध सिर्फ हम दोनो के बीच की बात नही थी, उसमे सुषमा का भी हिस्सा था, और उससे मेरे माता-पिता तथा चाचा-चाची के अतिरिक्त रायसाहब के समस्त परिवार की भावनाए भी जुडी हुई थी, यह जानकर मुझे एक साथ ही आश्चर्य, प्रसन्नता और बेचैनी का अनुभव हुआ। मुझे लगा जैसे विवाह के रूप मे एक बहुत बडा भार मेरे कन्धो पर पडने वाला था।

पत्र के अन्त मे सुषमा ने किशन भैया की बीमारी का उल्लेख किया था, बीच मे उनका रोग दब गया था, पर अब कुछ दिनो से वह बडे वेग से उभर पडा था। डॉक्टरो का कहना था कि उनकी आतो मे घाव हो गए है। टट्टी के साथ पहले कभी-कभी ही खून आ जाता था, अब बराबर खून और पीब आती है। हाल ही मे इलाज के लिए वे दिल्ली गए थे, कुछ दिन वहा रहे भी थे, अब वही के डॉक्टर की दवाए ले रहे है। साथ ही शहर के एक डॉक्टर भी बराबर आते रहते है।

किशन भैया की बीमारी की इस असमय चर्चा ने मेरी आनन्दाराधना मे विघ्न डाल दिया, जैसे सुन्दर सगीत के बीच किसीने बेसुरा अलाप छेड दिया हो। आज मुझे यह सोचकर कष्ट होता है कि मैंने उस दिन भी भैया के लिए विशेष सवेदना का अनुभव नही किया, और न मेरे मन मे यह कल्पना ही हुई कि उनके सुख-दुःख के साथ कुछ दूसरे लोगो का सुख-दुख भी जुडा हुआ था।

इससे भी ज्यादा कष्ट यह याद करके होता है कि स्वय पिताजी ने भी, मेरे द्वारा किशन भैया की बीमारी का हाल जानकर, विशेष चिन्ता

प्रकट नही की। वे रायसाहब के घर होने वाले विवाह-सम्बन्ध और उसके सुखद परिणामो के अनुचिन्तन मे लीन थे। हमारे घर मे सिर्फ माताजी ही ऐसी थी जो यह खबर सुनकर विशेष व्यग्र हुई। अपने और पिताजी के उन मनोवृत्ति-साम्य का ध्यान करके अब मुझे बेहद क्षोभ और ग्लानि होती है।

किशन भैया की दिन-प्रतिदिन बिगड़ती हुई हालत की खबर हमें मिलती रही थी। किसीको यह उम्मीद नहीं रह गई थी वे अच्छे हो सकेंगे। फिर भी जब फरवरी के अन्तिम सप्ताह में उनकी मृत्यु का समाचार मिला तो कुछ देर को हम सब स्तब्ध रह गए।

थोड़ी ही देर बाद माताजी की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। सस्वर रोती हुई वे बार-बार कह रही थीं "अब किशन की बहू का क्या होगा, कैसे वह अपनी लम्बी उम्र काटेगी!"

कई दिन तक माताजी इसी प्रकार रुदन करती रहीं। भैया की तेरहीं में पिताजी के साथ वे भी बिजनौर गईं। मुझे साथ ले चलना उचित नहीं समझा गया।

माताजी की अनुपस्थिति में उनका वह वाक्य रह-रहकर मेरे कानों में गूंजने लगा। उनके चले जाने पर जैसे उस घर का अनुचिन्तन खास तौर से मेरा ही कर्तव्य बन गया। बार-बार मैं भाभी और उनके भविष्य की कल्पना करता। कोशिश करने पर भी मैं अपना ध्यान किसी दूसरी ओर न ले जा पाता। दुनिया में भाभी अब अकेली और अवलम्बहीन हैं, यह स्थिति बारम्बार अपनी समग्रता में मेरे सामने उपस्थित हो जाती और उसके साक्षात्कार से मैं कांप उठता।

मेरे सामने भाभी के असख्य चित्र खिचकर आते। विवाह मे वे किस प्रकार वधू-वेश किए मण्डप मे आई थी, उस समय अपनी गति-विधि और विभिन्न अगो की आभा से वे कैसी जच रही थी, मौसी के घर नई वधू के रूप मे वे किस प्रकार प्रविष्ट हुई थी, फिर किस प्रकार उन्हे बालको और स्त्रियो ने घेर लिया था। मुझे खास तौर से भाभी की खान-पान आदि की वे क्रियाए याद आती जो मुख्यत मेरी उपस्थिति मे अनुष्ठित हुई थी और जिनमे थोडा-बहुत मेरा सहयोग था। मुझे कभी उनका हसना याद आता, कभी विशेष भगी से बाते करना, और कभी वह दृश्य जब किशन भैया ने उन्हे मेरी कहानी सुनते हुए डाटा था। ऐसे अवसरो पर मैं सोचता—भैया के मरने से भाभी को इतना अधिक कष्ट तो नही होना चाहिए। फिर तुरन्त ही मैं उनके निराश्रय भविष्य के सम्बन्ध मे कल्पनाए करने लगता।

और तब मुझे बरबस ध्यान आता कि मैंने कुछ विशिष्ट क्षणो मे भाभी को एक विशिष्ट आश्वासन दिया था। इस आश्वासन की स्मृति से मैं चौंक पडता।

मुझे दीखता कि भाभी चौके मे काम कर रही हैं, अथवा श्यामू को टट्टी कराने ले जा रही है, अथवा विमला और मजुल को बाजार भेजने के लिए तैयार कर रही है, अथवा और मुझे जान पडता कि मौसीजी उन्हे डाट रही है।

एक बार मैंने देखा कि भाभी डालडा के पीपे से घी निकालकर अपनी और मजुल की दाल मे डाल रही है, डाल रही है और रो रही है।

मैं इन चित्रो से परेशान रहने लगा, मैं चाहता, कोशिश करता कि ये मेरे अन्तर्नेत्रो से ओझल रहे। माताजी की तीन-चार दिन की अनुपस्थिति ने मुझे लगा कि घर का वातावरण इसी प्रकार के अनचाहे, ऐसे इन चित्रो से भर गया है।

मैं चाहता था कि मैं भाभी के बारे मे कुछ भी न सोचू, कुछ भी कल्पना न करू।

किशन भैया की दिन-प्रतिदिन बिगड़ती हुई हालत की खबर हमें मिलती रही थी। किसीको यह उम्मीद नहीं रह गई थी वे अच्छे हो सकेंगे। फिर भी जब फरवरी के अन्तिम सप्ताह मे उनकी मृत्यु का समाचार मिला तो कुछ देर को हम सब स्तब्ध रह गए।

थोडी ही देर बाद माताजी की आखो मे टप-टप आसू गिरने लगे। सस्वर रोती हुई वे बार-बार कह रही थीं "अब किशन की बहू का क्या होगा, कैसे वह अपनी लम्बी उम्र काटेगी!"

कई दिन तक माताजी इसी प्रकार रुदन करती रही। भैया की तेरही मे पिताजी के साथ वे भी बिजनौर गई। मुझे साथ ले चलना उचित नहीं समझा गया।

माताजी की अनुपस्थिति मे उनका वह वाक्य रह-रहकर मेरे कानो मे गूजने लगा। उनके चले जाने पर जैसे उस तथ्य का अनुचिन्तन खास तौर से मेरा ही कर्तव्य बन गया। बार-बार मैं भाभी और उनके भविष्य की कल्पना करता। कोशिश करने पर भी मैं अपना ध्यान किसी दूसरी ओर न ले जा पाता। दुनिया मे भाभी अब अकेली और अवलम्बहीन है, यह स्थिति बारम्बार अपनी समग्रता मे मेरे सामने उपस्थित हो जाती और उसके साक्षात्कार से मैं काप उठता।

मेरे सामने भाभी के असख्य चित्र खिचकर आते । विवाह मे वे किस प्रकार वधू-वेश किए मण्डप मे आई थी, उस समय अपनी गति-विधि और विभिन्न अगो की आभा से वे कैसी जच रही थी, मौसी के घर नई वधू के रूप मे वे किस प्रकार प्रविष्ट हुई थी, फिर किस प्रकार उन्हे बालको और स्त्रियो ने घेर लिया था। मुझे खास तौर से भाभी की खान-पान आदि की वे क्रियाए याद आती जो मुख्यत मेरी उपस्थिति मे अनुष्ठित हुई थी और जिनमे थोडा-बहुत मेरा सहयोग था। मुझे कभी उनका हसना याद आता, कभी विशेष भगी से बातें करना, और कभी वह दृश्य जब किशन भैया ने उन्हे मेरी कहानी सुनते हुए डाटा था। ऐसे अवसरो पर मैं सोचता—भैया के मरने से भाभी को इतना अधिक कष्ट तो नही होना चाहिए। फिर तुरन्त ही मैं उनके निराश्रय भविष्य के सम्बन्ध मे कल्पनाए करने लगता।

और तब मुझे बरबस ध्यान आता कि मैंने कुछ विशिष्ट क्षणो मे भाभी को एक विशिष्ट आश्वासन दिया था। इस आश्वासन की स्मृति से मैं चौंक पडता।

मुझे दीखता कि भाभी चौके मे काम कर रही हैं, अथवा श्यामू को टट्टी कराने ले जा रही है, अथवा विमला और मजुल को बाजार भेजने के लिए तैयार कर रही हैं, अथवा और मुझे जान पडता कि मौसीजी उन्हे डाट रही है।

एक बार मैंने देखा कि भाभी डालडा के पीपे से घी निकालकर अपनी और मजुल की दाल मे डाल रही है, डाल रही है और रो रही हैं।

मै इन चित्रो से परेशान रहने लगा, मैं चाहता, कोशिश करता कि वे मेरे अन्तर्नेत्रो से ओझल रहे। माताजी की तीन-चार दिन की अनुपस्थिति मे मुझे लगा कि घर का वातावरण इसी प्रकार के अनचाहे, अनगिनत चित्रो से भर गया है।

मै चाहता था कि मै भाभी के बारे मे कुछ भी न सोचू, कुछ भी कल्पना न करू।

माताजी के वापस आ जाने पर मैंने सतोप की सास ली, यह सोच-कर कि अब मैं अपने अवधान को दूसरी ओर सलग्न कर सकूगा।

किन्तु वैसा हुआ नही, माताजी मानो भाभी के आख्यानो से भरी हुई आई थी। सुबह, शाम, रात को, जब-जब वे मेरे सामने होती तो खास तौर से भाभी की ही चर्चा करने लगती। दिन-रात उनकी जबान पर 'किशन की बहू' चढी रहती। वह कितनी क्षीण और दुर्बल हो गई है, किस प्रकार गुमसुम-सी रहती और आसू बहाती है, किस प्रकार अपनी बच्ची की उपेक्षा करती है—और वह बच्ची कैसी खराब हालत मे, लक्षण-झडी-सी फिरती है—इत्यादि बातें वे बडे द्रवित, करुण भाव से सुनाती। मैं उन बातो को ध्यान से सुनता, फिर एकाएक रुष्ट होकर मा से कहता—"मा, मेरे सामने तुम भाभी की बाते न किया करो।" इसपर वे चकित होकर मेरी ओर देखने लगती।

एक दिन मैंने माताजी से पूछा—"मा, क्या भाभी की दूसरी शादी नही हो सकती ?"

"नही बेटा, अब उससे शादी कौन करेगा, अपने यहा विधवा की शादी का चलन ही कहा है।"

"लेकिन मा, हो जाए तो अच्छा है न ?"

"हा, अच्छा तो है ही, पर करेगा कौन ? फिर उसके तो एक लडकी भी है।"

इससे आगे बढकर यह पूछने का साहस मुझे न होता कि क्या भाभी का विवाह मेरे साथ हो सकता है। लेकिन मेरा अन्तर्हृदय लगातार इस प्रश्न को लेकर आन्दोलित रहता।

मैं इस प्रश्न को टालता रहता, यह सोचकर कि यह नामुमकिन बात थी। मेरी शादी तय हो चुकी थी, और अब उसमे कोई विपर्यय सम्भव नहीं था।

जो बात एकदम नामुमकिन है, अकल्पनीय है, उसकी चिन्ता से फायदा ?

लेकिन वे चित्र और स्मृतिया—वे अनवरत मुझे आकुल और उद्वेलित रखने लगे। यह मेरे स्वास्थ्य के लिए खराब था मेरी शीघ्र ही आने वाली परीक्षा के लिए अहितकर था। मार्च के अन्तिम सप्ताह मे मेरी गणित की परीक्षा होने वाली थी।

मैं जब बीजगणित के प्रश्न लेकर बैठता, अथवा 'कैलक्युलस' की समस्याओ मे उलझना चाहता, तो अकस्मात् अनगिन स्मृतिया और तस्वीरें मेरी चेतना को आकर घेर लेती, और मुझे एकागचित्त होने के अयोग्य बना देती। खीझकर मैं उठ बैठता, कमरे मे इधर-उधर घूमता, अपने को ठडे भाव से समझाता कि परीक्षा बहुत निकट है और उसकी तैयारी बहुत ही जरूरी है। फिर मैं काम करने के लिए बैठता। कुछ क्षण शान्ति से गुजर जाते, किन्तु थोडी ही देर बाद फिर वैसी ही उधेड-बुन शुरू हो जाती। मेरे सामने जैसे कोई जलते हुए अक्षरो मे लिख जाता भाभी का क्या होगा?

और मानो हजार सकेतो और चित्रो मे परिगणित होकर भाभी का व्यक्तित्व मुझे आक्रान्त कर लेता।

'तुम भाभी को प्यार करते हो!' कोई मुझसे कहता, 'उन्हे त्यागकर तुम कैसे सुखी रह सकते हो?'

'नही, नही, यह गलत है, मान लो कि किशन भैया की मृत्यु न हुई होती, अथवा मेरी शादी के बाद होती, तो? तो क्या होता? तब मैं जिस प्रकार रहता वैसे अब भी रह सकता हू।'

'लेकिन भाभी?'

'वे भी वैसे ही रह सकती हैं। पहले भी वे सुखी कहा थी?'

'हा, लेकिन यदि भाभी को पा जाओ तो?'

'तो क्या कोई खास बात तो नहीं है। कान्ता मे ही क्या कमी है? फिर अब यह मुमकिन नहीं रहा है। कैसे मैं पिताजी से कह सकता हू कि मैं यह शादी नहीं करूगा। और फिर सिर्फ पिताजी का ही सवाल तो नही है। रायसाहब क्या सोचेंगे? उनकी कितनी बदनामी होगी, उनकी लडकी

पर लाछन लगेगा। वे क्या यो ही सहन कर लेगे? बडे शक्तिशाली व्यक्ति है, और सुना है कि गुस्सावर भी है।'

'तुम कायर हो, डरते हो।'

'नही, नही, मैं डरता नही हू। बात इतनी ही नही है। मैं एक समझदार और विचारशील व्यक्ति हू। भावना मे वह जाने को प्रशसनीय नही समझता। मै बुद्धिवादी हू। मानता हू कि जीवन का नियत्रण और सञ्चालन बुद्धि द्वारा होना चाहिए। ससार के सब अच्छे विचारको का यही मत रहा है। प्लेटो ने खुद लिखा है '

'ह ह ह !'

'मैं वैज्ञानिक हू, मेरे मस्तिष्क को विज्ञान की ट्रेनिग मिली है, मैं अपने को असगत भावुकता के प्रवाह मे कैसे वह जाने दे सकता हू।'

'ह ह ह ! तुम डॉक्टर भल्ला के प्रशसक शिष्य हो, क्रान्तिकारी '

'क्रान्तिकारी ! नही-नही, क्रान्तिकारी नही हू, होना भी नही चाहता। कोई भी समझदार व्यक्ति क्रान्तिकारी नही होता। क्रान्ति भी एक प्रकार की भावना है, असफल यौवन की एक वहक। क्रान्तिकारी क्यो मैं क्रान्तिकारी बनू? स्वय डॉक्टर भल्ला ने कौन-सी क्रान्ति की है? सिर्फ सोचने का नाम तो क्रान्ति नही है। सोच तो मै भी सकता हू, सोचता था भी। लेकिन तब मैं कमसमझ था। मुझे भले-बुरे की उतनी जानकारी न थी। और अगर परिस्थिति न बदल गई होती तो मैं वैसा कर सकता, कर लेता। लेकिन अब बात दूसरी है।'

'किन्तु भाभी का भविष्य?'

'वह समस्या इतनी कठिन नही है, वन होने पर मैं उनकी सहायता कर सकता हू।'

'और भी बाते सोचने की है, भाभी अकेली नही है, उनके साथ एक बच्ची भी है। विवाह के साथ ही एक बच्ची का बाप बन जाना, पिता कहलवाना, बडी लज्जा की बात है। आजकल जल्दी-जल्दी बच्चे

पैदा करना मूर्खता समझी जाती है। मूर्खता, समझे? मुझे इस विशेषण से सबसे ज्यादा चिढ है।'

'लेकिन मञ्जुल बडी प्यारी लडकी है, भोली और सुन्दर, उसे अपनाने मे लज्जा कैसी?'

'लज्जा नही, मूर्खता, कौन समझदार व्यक्ति विवाह के साथ ही एक बडे बच्चे का पिता कहलाना पसन्द करेगा?'

'और मान लो कि मैंने इस विवाह से इन्कार किया। इसका अर्थ है पिताजी की नाराजगी, वे हर्गिज मुझे क्षमा नही करेंगे। और यह तो वे स्वीकार ही नही कर सकते कि मैं भाभी के साथ विवाह करू कितनी उमग के साथ पिताजी ने अपने मित्रो तथा अफसरो को मेरे इस सम्बन्ध की सूचना दी है।'

'सबसे बडा प्रश्न है—निर्णीत सम्बन्ध से इन्कार करके, और पिताजी से सम्बन्ध तोडकर मैं कहा जाऊगा? और कहा रहूगा? दुर्भाग्य से इसकी भी कोई आशा नही कि मैं प्रतियोगिता मे सफल हो सकूगा।'

'लेकिन तुम लॉ की प्रैक्टिस शुरू कर सकते हो।'

'उसका भी क्या निश्चय? फिर अभी तो छ महीने की ट्रेनिंग लेनी होगी। उतने दिनो तक मैं क्या करूगा?'

'बिना 'रिस्क' के लाभ नही होता, पुरुष को सघर्ष के लिए तैयार रहना चाहिए।'

'मैं 'रिस्क' से नही डरता, सघर्ष से भी नही डरता। लेकिन 'रिस्क' और सघर्ष स्वय अपने मे साध्य नही हैं। आखिर 'रिस्क' और सघर्ष किसलिए? एक विधवा से शादी करने के लिए? माना कि भाभी सुन्दरी है, लेकिन सौन्दर्य ही तो सब कुछ नही है। फिर कान्ता भी तो कुरूप नही है। और उनके पिता का सामाजिक गौरव तथा 'स्टेटस'—वह भी उपेक्षणीय नही है। वह जैसे कान्ता के व्यक्तित्व का अंग है। आज की दुनिया मे सफलता उसे ही मिलती है, तरक्की वही कर सकता है, जिसके बडे-बडे 'कनक्शन्स' हो, बडे लोगो से सम्बन्ध हो। यह मेरा सौभाग्य ही है

कि मेरा रायसाहब के घर रिश्ता हो रहा है।

' कितनी जल्दी वे मुझे पाच सौ की नौकरी दिला सकते है !

' मनुष्य समाज मे विच्छिन्न होकर नही रह सकता। उसकी इच्छाए, उसका सुख-दुख सब सामाजिक चीजें हैं। विवाह सामाजिक है और प्रेम का सुख भी समाज से असम्बद्ध नही है। समाज-विरोधी प्रेम और विवाह व्यक्ति को कभी सुखी नही बना सकते।

' यदि मैं सुखी और सन्तुष्ट जीवन की कामना करता हू तो इसमे अस्वाभाविक या आश्चर्यजनक क्या है ?

' माना कि मैंने भाभी को आशा और आश्वासन दिया था, वचन भी दिया था। लेकिन तब मैं अबोध था। क्या मुझे यह अधिकार नही कि मैं कच्ची, अप्रबुद्ध अवस्था के बचपन से फिरकर अपने जीवन को उस राह पर चलाऊ जो मेरे विकसित विवेक के अनुकूल है ?

' नही, नही, रायसाहब के घर से सम्बन्ध छिन्न करके भाभी के साथ विवाह करना सम्भव नही है।

' उचित भी नही है, क्योकि औचित्य बुद्धि और समाज के अनुकूल चलने मे है। भावना नही बुद्धि को, व्यक्तिगत रुचि नही समाज को हमारे महत्वपूर्ण निर्णयो मे प्रधानता मिलनी चाहिए।'

भाभी के दावे और नये सम्बन्ध के विघटन के विरुद्ध जितने तर्क हो सकते थे वे सब मेरी बुद्धि ने उपस्थित कर दिए। इन तर्कों की मदद से भाभी से सम्बद्ध स्मृतियो तथा भावनाओ पर विजय पाकर, और उन्हे भुलाकर, मैं परीक्षा की तैयारी मे जुट जाना, जुटे रहना चाहता था।

तर्कों की बहुलता ही मानो विरोधी पक्ष के महत्त्व की प्रच्छन्न स्वीकृति थी। मैं लगातार अपने को समझाता और विपरीत भावनाओ के स्फुरण के विरुद्ध सघर्ष करता।

इस भयकर द्वन्द्व की स्थिति मे मैं एकदम अकेला और असहाय था। मैं जिन्दगी के नये दोराहे पर आ खडा हुआ था और मेरे पास यह जानने का कोई साधन न था कि मेरा गन्तव्य किधर है। जीवन के महत्त्वपूर्ण निर्णयो के अवसर पर व्यक्ति किस प्रकार एकाकी छोड दिया जाता है! मेरा कोई ऐसा मित्र या सुहृद् न था, कोई ऐसा बुजुर्ग भी न था, जिसके साथ बैठकर अपने अगले कदम के बारे मे विमर्श करता—जिसके सम्मुख अपने अन्तर की सघर्ष-वेदना को खोलकर रख सकता। मेरे वातावरण मे ऐसे स्वीकृत सिद्धान्त-सूत्र भी नही थे जो निश्चयात्मक पथ-निर्देश कर सकते।

एक तरफ भाभी की मूक व्यथा थी, दूसरी ओर पिताजी के अपमान और रायसाहब की मर्यादा, एक तरफ अनिश्चित संघर्षमय भविष्य था, दूसरी ओर अनायास सफलता, एक तरफ मेरी प्रच्छन्न व्यक्तिगत अभिलाषा थी, दूसरी ओर सुस्पष्ट सामाजिक जरूरतें। अन्त में मैंने दूसरे मार्ग या विकल्प को पसन्द किया, कौन कह सकता है वह मेरी भूल ही थी ?

किसी तरह मेरी दोनो परीक्षाए समाप्त हुईं। इसके बाद पन्द्रह दिन के भीतर ही मेरा विवाह हो जाने वाला था।

मैं अभी भी स्वस्थ नही था, मेरे भीतर का संघर्ष जो परीक्षा की उत्कट जरूरत और उत्तेजना मे दब गया था, फिर उभरने लगा था।

ऐसी मन स्थिति मे मैं दो-तीन दिन लगातार सिनेमा देखने गया। किसीने इसपर ध्यान नही दिया।

एक दिन 'मेफेयर' थियेटर मे अकस्मात् मेरी दृष्टि अख्तर और सुधीर पर पडी। वे मेरे पीछे के क्लास मे बैठे थे। मैंने उन्हे देखा और देखकर चुपचाप सिर मोड लिया। मैं घटिया क्लास मे था, मैं नही चाहता था कि उन लोगो की दृष्टि मुझपर पडे। आगे के सस्ते दर्जे म बैठे हुए मुझे लग रहा था कि किसी तरह वे मुझे न देखे—किसी तरह मेरा वह कुसमय अज्ञातवास मे कट जाए।

किन्तु मेरे दुर्भाग्य मे यह नही हुआ। इण्टरवल म पेशाबघर जाने के लिए मैं बाहर निकला। लौटते हुए यकायक अख्तर और सुधीर का सामना हो गया। मालूम हुआ कि उन लोगो ने मुझे बहुत पहले देख लिया था, और यह कि मुझे अवश्य ही उनके साथ चाय पीनी पडेगी।

चाय पर सुधीर ने अकस्मात् अंग्रेजी म कहा—'आप जानते है, मिस्टर राजन, अख्तर और मैं 'इगेज' हो गए है, जल्द ही हम दोनो की शादी होगी।"

मैंने उत्साहशून्य स्वर मे बधाई दी।

सिनेमा से लौटने पर मैंने महसूस किया कि मेरा आन्तरिक संघर्ष बहुत कुछ मृदुल हो गया है। मैं मन ही मन धनी बनने का निश्चय कर चुका था।

विवाह मे बहुत-से रिश्तेदार आए। अधिकाश को यह देखने का कुतूहल था कि रायसाहब कितनी धूमधाम से शादी करते है। चाचाजी के परिवार के अतिरिक्त बिजनौर से मौसीजी आई, भाभी नही आई। मैं इस परिस्थिति से सन्तुष्ट था। भाभी का सामना करते हुए मैं डरता था।

फिर भी, विवाह की उस सर्वतोमुखी व्यस्तता मे, मेरा हृदय भाभी की खबर पाने को बेचैन था। मौसी के आसपास खडे होकर, उनसे बाते करके, मैं यह जानना चाहता कि भाभी का क्या हाल है और उनका मेरे विवाह के प्रति क्या रुख है।

किन्तु मौसी ने इस सम्बन्ध मे कोई अपेक्षित सकेत नही दिया। वे सिर्फ एक ही चीज का विवरण देना पसन्द करती—किस प्रकार किशन भैया ने तकलीफें उठाई और कैसे उनका प्राणान्त हुआ।

मैंने अपनी जिज्ञासा सुषमा के सामने रखी, पर इस बारे मे उसने दिलचस्पी नही ली। उसे विशेष जानकारी भी नही थी। वस्तुत भैया की मृत्यु के बाद वह भाभी से ठीक बात ही नही कर पाई थी। और अब विवाह के अवसर पर इस तरह के प्रसग छेडना उसे एकदम अरुचिकर था।

विवाह सम्पन्न हुआ। दिन, सप्ताह तथा महीने बीतने लगे।

बीच मे मैंने एक बार सुना कि भाभी की तबीयत ठीक नही है। आषाढ मे सुषमा की शादी थी। उनके पति ने इसी वर्ष सिविल इजीनियरिंग का कोर्स पूरा किया था। हमारा पूरा परिवार शादी मे सम्मिलित होने गया।

वहा पहुचकर मैंने भाभी के बारे मे विचित्र बातें सुनी। सुना कि उनकी हालत अच्छी नहीं है, कि वे किसीसे बोलती-चालती नहीं, कि

उनका दिमाग फिर गया है।

मैं भाभी को देखने गया। इससे पहले मैं बिलकुल नहीं जानता था कि दिमाग फिरना किसे कहते हैं, मस्तिष्क का विकृत होना क्या चीज है।

मैं पहुचा तो भाभी रसोई के पास के कमरे मे थी। मैंने उन्हे आवाज दी। वे सहमा उठकर खडी हुई और धीरे-धीरे बढकर मेरे पास आई।

मैंने पुन उन्हे सम्बोधित किया—"भाभी!"

भाभी विचित्र कुतूहल और जिज्ञासा के भाव से मुझे देखने लगी। स्पष्ट ही वे मुझे पहचान नही रही थी।

उनकी आखो मे अजीब-सी उदासी थी, चेहरे पर कष्ट-मिश्रित कुतूहल और लम्बी श्रान्ति के चिह्न थे।

"भाभी, मैं हू राजन, तुम्हारा देवर, तुमने मुझे पहचाना नही?"

भाभी, वैसी ही व्यथित, थकी दृष्टि से देखती रही।

मैंने कहा—"भाभी, बैठ जाओ।"

वे धीरे-धीरे चलकर पलग के पास पहुची और बैठ गई।

मैं खडा रहा, स्तब्ध और अवाक्। मेरी अपलक दृष्टि भाभी के मुख पर टिकी थी।

'मेरी सुन्दर, स्नेहमयी, तेजस्विनी भाभी को क्या हो गया, मेरी भाभी को क्या हुआ है!'

मेरे अन्तर मे हाहाकार का स्वर उठ रहा था, उठकर फूटना चाहता था।

थोडी देर मे मजुल आई। वह बडी दुबली हो गई थी, वह बहुत डरी हुई थी। वह एक पुराना, गन्दा फ्राक पहने हुए थी, उसके पैर नगे थे। उसे गोद मे लेते हुए मेरी आखो से आसू टपकने लगे।

कितने चाव से मैंने इस बच्ची का नामकरण किया था!

भाभी देख रही थीं, कभी मुझे और कभी मजुल को। उनकी दीर्घ, निस्तेज आखें न जाने किस भाषा मे मुझसे क्या कह रही थी—क्या उपालम्भ कर रही थीं।

चुपचाप, उदास और अनुतप्त मैं घर पर लौट आया। मेरे जी मे

आ रहा था कि कही एकान्त मे जाकर खूब रोऊँ—देर तक रोता रहूँ।

'नही-नही, यह सयोग की वात है, परिस्थितियो का षड्यन्त्र है, भाभी की इस हालत के लिए सिर्फ मैं ही कैसे ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता हू !

फिर क्यो मेरा हृदय, मेरी अन्तरात्मा मुझे धिक्कारती है, क्यो मैं इस धिक्कार की परवाह करता हू ? पण्डितो का कहना है कि हमारी भलाई-बुराई, धर्म-अधर्म की भावना समाज-सापेक्ष है—सामाजिक है। मैंने जो कुछ किया बुद्धि के अनुकूल किया, अपने समाज और युग की जरूरतो के अनुरूप किया। मैं दोषी कहा हू ?

क्या वैज्ञानिक दृष्टि और समझ के वाहर भी जीने के कुछ सूत्र हैं—क्या बुद्धि के वाहर भी जीवन-विवेक है ? क्या ममता का तानावाना हमारे ज्ञान और तर्क का अतिक्रमण कर सकता है ?

क्या हमारे प्राणो की कुछ ऐसी भूखें भी होती हैं जिन्हे हमारी वहिर्मुख आखें नही देख पाती, जिन्हे समाज की निन्दा-स्तुति नही छूती ? क्या समाज मे सफल एव सुखी समझा जाने वाला व्यक्ति भी असन्तुष्ट हो सकता है ?

क्या सामाजिक लेन-देन के वाहर भी मनुष्य और मनुष्य का सम्वन्ध होता है, मनुष्य का मनुष्य के प्रति कर्तव्य होता है ?

वह कौन-सा रहस्यमय लगाव, रहस्यमय एकता है जो भाभी की अव्यक्त, घनीभूत वेदना को मेरे प्राणो मे सक्रान्त कर देती है ?

नीति और धर्म का वह कौन-सा विज्ञान-सम्मत सिद्धान्त है जिसके अनुसार भाभी की रक्षा और प्रसन्नता के लिए मुझे अपने सम्पूर्ण भविष्य को अनिश्चय और सघर्ष मे डाल देना चाहिए था ?

मैं यह नही कहता कि आप मेरे कृत्यो का निर्णय न करें, उनपर पाप-पुण्य की मुहर न लगाएं, किन्तु आप मेरी दुर्वलताओ को सहानुभूति से देखें, सिर्फ यही प्रार्थना है।

रायसाहव की मदद से मुझे एक सर्विस मिली। अच्छी ही थी,

साढे तीन सौ प्रारम्भिक वेतन था, और आठ सौ तक का ग्रेड। किन्तु उस सर्विस मे मैं रुक नही सका मुझे लगता जैसे वह मेरी अशोभन अवसरवादिता का प्रतीक और प्रमाण थी। वर्ष बीतने मे कुछ पहले ही उससे इस्तीफा देकर मैं वकालत का धन्धा करने लगा।

लोग कहते है कि मैं एक सफल व्यक्ति हू, एक बहुत सफल वकील। मैं उनकी बात मे विश्वास करता हू, करना चाहता हू।

हमारी सफलता और असफलता, उन्नति और अवनति को आकने का अन्तिम अधिकार समाज को है। अतएव कोई कारण नही कि मैं अपने पर अर्थात् अपनी सफलता पर गर्व न करू। रही बात भाभी की, सो मेरा विश्वास है कि यदि वे फिर से बोलना सीख भी जाए तो भी उनकी आवाज कभी समाज और मानव-इतिहास के कानो तक नही पहुच सकेगी—उस समाज के, जो चिर-जाग्रत् कर्मठ लोगो की क्रीडा-भूमि है, उस इतिहास के, जो सघर्षशील व्यक्तियो और वर्गों की जीवन-गाथा है।

इसीलिए मैंने अब तक इसकी कोशिश नही की कि भाभी को (जिनका अब मायके मे ही ठिकाना रह गया है) किसी मानसिक अस्पताल मे भरती कराके उनका इलाज कराऊ। अपने खोये हुए बोध को वापस पाकर क्यो वे अपने जीवन और मेरे व्यवहार को लेकर व्यर्थ की दुश्चिन्ता मे पडें?

इसीलिए, अपने सारे अतीत के बावजूद, मैं निर्भीक, प्रतिष्ठित ढग से विचरण करता हू।

स्पष्ट ही मुझे कोई कष्ट नही है, और आपकी सहानुभूति की जरूरत भी नही है।

फिर भी, इस सम्बन्ध मे बात करने और अपना मतामत प्रकट करने के लिए, यदि आप कभी मेरे नये मकान मे पदार्पण करे, तो मुझे प्रसन्नता होगी। मुझे विश्वास है कि आप मेरे एक पुराने घाव को कुरेदेंगे ही नही, उसकी मरहम-पट्टी भी करेंगे।

○○○

यदि आप चाहते हैं
कि हिन्दी में प्रकाशित
नवीनतम उत्कृष्ट पुस्तकों का परिचय
आपको मिलता रहे,
तो कृपया अपना पूरा पता
हमें लिख भेजें।
हम आपको इस विषय मे
नियमित सूचना देते रहेंगे।

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६